Chap-4

चतुर्थ अध्याय : लखपति रचित शास्त्रीय ग्रन्थ

चतुर्थ अध्याय

लखपति रचित शास्त्रीय ग्रन्थों

महाराव लखपतिसिंह के समस्त साहित्य पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि विषय-वस्तु की दृष्टि से उन के दो प्रकार के ग्रन्थ मिलते हैं : एक — शास्त्र-विषयक और दूसरे — शुद्ध काव्य-ग्रन्थ । शास्त्र-विषयक ग्रन्थ दो हैं, जो दो भिन्न विषयों को ले कर लिखे गये हैं । " सुरतरंगिनी " में संगीत-शास्त्र की चर्चा है और " रस-तरंग "[१] में नायिका-भेद एवं शृंगार रस का शास्त्रीय निरूपण किया गया है । " मृदंग मोहरा ", जो मृदंग के शास्त्रीय बोलों का संग्रह है, को भी उनके तृतीय शास्त्रीय ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया जा सकता है । परंतु एक तो वह कुछ छात्रों के रूप में ही अवशिष्ट है और दूसरे, मृदंग के प्राप्त बोलों की संख्या भी इतनी अपर्याप्त है, कि उन के आधार पर तद्विषयक विशिष्ट चर्चा संभव नहीं है । अतः इसका सम्यक् विवेचन के लिए पूरी रचना की प्राप्ति की अपेक्षा रखता है । शुद्ध काव्य-ग्रन्थों के अंतर्गत " लखपति भक्ति विलास " और " सदाशिव-ब्याह " आते हैं जो भक्ति-भावना तथा शृंगार को ले कर लिखे गये हैं । लखपतिसिंह विरचित जो पुनटकल सवैये प्राप्त हुए हैं उनको भी उन के शुद्ध काव्य के अन्तर्गत स्थान दिया जा सकता है । उन पुनटकल छंदों में भी लखपतिसिंह ने निर्वेद, वैराग्य और भक्ति की तीव्र अनुभूति को व्यक्त किया है । लखपतिसिंह के उपर्युक्त समग्र कृतित्व में उनके शास्त्रीय ग्रन्थों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

---

१ प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के लेखक ने पूर्ववर्ती अध्याय के अन्तर्गत यह सप्रमाण सिद्ध किया है कि महाराव लखपतिसिंह रचित " लखपति शृंगार " का मूल नाम " रसतरंग " था । अतएव यहाँ इसी नाम को स्वीकार किया गया है ।

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल का प्रारंभ संवत् १७०० विक्रमी से माना गया है । [२] इस काल में संस्कृत में लिखे प्रसिद्ध शास्त्रीय-ग्रन्थों के विषय को हिन्दी में सर्वसुलभ बनाने की एक सामान्य प्रवृत्ति प्रचलित दिखाई पड़ती है और इस कार्य को साहित्यिक गौरव की दृष्टि से देखा जाता था ।[३] द्वितीय अध्याय में हम लक्ष्य कर चुके हैं महाराव लखपतिसिंह का कविताकाल संवत् १७९५ के कुछ पूर्व से आरम्भ होता है । अतः उनके शास्त्रीय ग्रंथों की रचना की पृष्ठभूमि के रूप में उपर्युक्त परिस्थिति को माना जाना सत्य के निकट ही कहा जायगा ।

लखपतिसिंह की जीवनी और व्यक्तित्व के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि वे कवि एवं कलाकारों के आश्रयदाता ही नहीं, काव्य शिक्षा के प्रणेता भी थे । कच्छ जैसे अहिन्दी प्रदेश में हिन्दी-काव्य-निर्माण एवं कवि-शिक्षा के प्रयोजन के लिये तो संस्कृत एवं ब्रजभाषा के प्रसिद्ध शास्त्रीय-ग्रन्थों का अध्ययन और प्रणयन एक अनिवार्य एवं स्वाभाविक आवश्यकता कही जा सकती है । सम्भवतः आश्चर्य तो तब होता जब लखपतिसिंह ने इस प्रकार की प्रवृत्ति को महत्व न दिया होता । जैसा कि लक्ष्य किया जा चुका है " सुरतरंगिनी " में संगीत-शास्त्र के और " रसतरंग " में नायिकाभेद के विषय का ब्रजभाषा में विवेचन किया गया है । क्रमशः इन दोनों

oooooooo

२ "हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास ", षष्ठ भाग, प्रथम संस्करण, पृ० १७२

३ वही, पृ० २९१

शास्त्रीय-ग्रन्थों की विषय-वस्तु का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

(१) " सुरतरंगिनी " : यह संगीत-शास्त्र विषयक ग्रंथ है । उसके वर्ण्य-विषय का परिचय पूर्ववर्ती पृष्ठों में दिया गया है । यहाँ, सर्वप्रथम, उस में हुए शास्त्रीय विषय-वस्तु की परंपरा के निर्वाह की चर्चा की जा रही है ।

शास्त्रीय-आधार :
000000000000

तृतीय अध्याय के अंतर्गत यह निर्दिष्ट किया गया है कि ग्रंथ के आरंभ में ही कवि ने " संगीत-रत्नाकर " के मतानुसार प्रस्तुत ग्रंथ की रचना करने की स्वीकारोक्ति लिखी है । प्रस्तुत चर्चा के संदर्भ में ग्रंथ के अंत में दी गई निम्नलिखित उक्ति भी विचारणीय है :

" रागादिक गीतादि कैं हाव भाव रस भेद ।
सब को नीकैं कर कहो भाविक लछन वेद ।। ५५
तानसेन मत आंन के भरत हीं चित लगाये ।
संगीत मूर्छन आदि सब दीन हिं भेद वताये ।। ५६ ।। "
(" सुरतरंगिनी ", तृतीय अध्याय, अंतिम छंद)

कवि इन पंक्तियों में स्पष्टतः लिखते हैं कि राग, गीत आदि के हाव, भाव, रस के भेद एवं संगीत की मूर्छनाओं आदि को उन्होंने भरत, तानसेन के मत को ध्यान में रख कर कहा है । तात्पर्य यह है कि " सुरतरंगिनी " की रचना में, कवि के कथनानुसार, शार्ङ्गदेव कृत " संगीत-रत्नाकर " तथा भरत और तानसेन के मतों का भी आधार लिया गया है । अतएव " संगीत-रत्नाकर ", तानसेन के मतादि का परिचय यहाँ प्रासंगिक ही होगा ।

" संगीत-रत्नाकर " संस्कृत में लिखा हुआ अत्यधिक

प्रसिद्ध संगीत-शास्त्रीय ग्रंथ है जिस की रचना पंडित शार्ङ्गदेव ने १३वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में की थी । [५] प्रसिद्ध संगीतशास्त्री पंडित विष्णुनारायण भातखंडे जी के शब्दों में ""संगीत-रत्नाकर " हमारे संगीत की ऐतिहासिक श्रृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी है । " [६] उन्होंने इस की दो विशेषताओं का उद्घाटन किया है : एक ओर, तो वह अपने विषय का महत्वपूर्ण, प्रामाणिक और प्रसिद्ध ग्रंथ है तथा दूसरी ओर उस की विषय-वस्तु दुर्बोध एवं विवादास्पद है । [७] इस से यह प्रकट है कि जिस प्रकार इस ग्रंथ की प्रसिद्धि " सुरतरंगिनी " की रचना में प्रेरक बनी, उसी प्रकार उसकी कठिन एवं विवादास्पद विषय-वस्तु भी प्रस्तुत ग्रन्थ की विषय-वस्तु के स्वरूप-निर्माण का कारण बनी होगी । दोनों ग्रन्थों की विषय-वस्तु के साम्य-वैषम्य पर विचार करने से " सुरतरंगिनी " में हुए शास्त्रीय विषय-वस्तु की परंपरा के निर्वाह को प्रकाशित किया जा सकता है ।

"संगीत-रत्नाकर " और " सुरतरंगिनी " में विषय-वस्तुगत साम्य-वैषम्य : प्रथम अध्याय :

प्रथम अध्याय : " संगीत-रत्नाकर " की भाँति

५ " भारतीय संगीत का इतिहास", पृ० २०७, ले० उमेश जोशी, प्रथम संस्करण, १९५७, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत, मानसरोवर प्रकाशन महल, फीरोज़ाबाद द्वारा प्रकाशित ।

६ वही, पृ० २०७

७ " भातखंडे संगीत-शास्त्र ", भाग तीसरा, पृ० ३९, मू० ले० पंडित विष्णुनारायण भातखंडे, अनु० विश्वम्भरनाथ भट्ट और सुदामाप्रसाद दुबे, संगीत कार्यालय, हाथरस द्वारा प्रकाशित ।

प्राय: " सुरतरंगिनी " के प्रथम अध्याय को भी " सुराध्याय " शीर्षक दिया गया है । " संगीत-रत्नाकर " के स्वरगताध्याय को आठ विषयों में विभाजित किया गया है, ८ १- पदार्थ संग्रह, २- पिंडोत्पत्ति, ३- नाद-स्थान, श्रुति, स्वर, जाति, कुल, दैवतम्, छंद और रस, ४- ग्राम, मूर्च्छना, क्रम, तान, ५- साधारण, ६- वर्णलंकार, ७- जाति और ८- गीति । " सुरतरंगिनी " में लगभग इसी से मिलती हुई विषय-वस्तु वर्णित की गई है, जैसे : नाद-स्तुति, ब्रह्मस्तुति, संगीतफल, मार्गवर्णन, चतुर्दश नाड़ीनाम, नादमहिमा, शरीर उत्पत्ति, श्रुतिलच्छन, काल लच्छन, सुरलच्छन, विकृत लच्छन, तीव्र कोमलादि ज्ञानविधि, विवादी ज्ञानविधि, अनुवादी ज्ञानविधि, ग्रामविचार वर्णन, मूर्च्छना नाम कथन, तान लच्छन, ग्रामवर्णन, प्रस्तार ज्ञानविधि, नष्ट ज्ञानविधि, षड्मेरु ज्ञानविधि, चतुर्विध सुरकथनं ।

द्वितीय अध्याय :

" संगीत-रत्नाकर " के द्वितीय अध्याय का शीर्षक है " रागविवेकाध्याय " उसी प्रकार " सुरतरंगिनी " का " रागाध्याय " है । " संगीत-रत्नाकर " के द्वितीय अध्याय का वर्ण्य-विषय इस प्रकार है : ग्राम राग, उपराग, भाषा विभाषिका, अंतर्भाषा, समग्र राग, भाषा के ~~अंस~~ अंग उपांग और क्रिया के अंग आदि । " सुरतरंगिनी " के द्वितीय अध्याय में वर्ण्य-विषय इस से भिन्न प्रकार का मिलता है । " संगीत-रत्नाकर " से भिन्न, लखपतिसिंह ने राग-रागिनियों का पुत्र-भार्या-पद्धति के अनुसार वर्गीकरण कर के उन का देव-देवी-रूपों में सुंदर, सरस काव्यात्मक वर्णन किया है । इस अध्याय में शास्त्रीय विवेचन की अपेक्षा काव्य-रचना की प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है ।

०००००००

८ " संगीत-रत्नाकर ", संपा० एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री, प्रस्तावना, पृ० VIII, ले० सी० कुष्हन् राजा ।

महाराव लखपतिसिंह ने " सुरतरंगिनी " के इस द्विवतीय अध्याय में काव्य-सर्जन की प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है जिस की विशेष चर्चा आगे की जायेगी । शास्त्रीय दृष्टि से पुत्र-भार्या-पद्धति "संगीत-रत्नाकर " के बाद के और " सुरतरंगिनी " से पूर्व के ग्रन्थों में मिलती है । लखपतिसिंह ने द्विवतीय अध्याय के निर्माण में उन ग्रन्थों का आधार लिया होगा, जिस पर आगे विचार किया जायेगा ।

तृतीय अध्याय :

इस अध्याय में " सुरतरंगिनी " के ~~कै~~ कवि ने " संगीत-रत्नाकर " का ही आधार ग्रहण किया है । उस में आलाप के लक्षण एवं प्रकार, गमक की परिभाषा एवं प्रकार तथा इन प्रकारों के लक्षण आदि दिये हैं । इस के अनंतर गायक के दोष अर्थात् दोषयुक्त गायन के लक्षण दे कर सदोष एवं अदोष गायन के वर्णन के साथ " सुरतरंगिनी " की समाप्ति होती है ।

तुलनात्मक निष्कर्ष :

इस प्रकार " ~~सु~~ सुरतरंगिनी " की रचना में कवि ने पंडित शार्ङ्गदेव रचित " संगीत-रत्नाकर " का शास्त्रीय आधार अवश्य ग्रहण किया है, परंतु वह उस के प्रथम और तृतीय अध्यायों तक ही सीमित है । " संगीत-रत्नाकर " के अनुसार सात अध्याय रचने का कवि ने ग्रंथारंभ में प्रतिज्ञा-कथन किया है परंतु " संगीत-रत्नाकर " की शेष, चतुर्थ अध्याय से ले कर सप्तम अध्याय तक की, सामग्री " सुरतरंगिनी " में उपलब्ध नहीं है । अतएव निष्कर्ष यही निकलता है कि " सुरतरंगिनी " की रचना में " संगीत-रत्नाकर " का आंशिक अनुकरण ही हुआ है । उस के शेष अंश, अर्थात् द्विवतीय अध्याय के शास्त्रीय आधार पर अब विचार किया जा रहा है ।

" सुरतरंगिनी " के द्विवतीय अध्याय का शास्त्रीय आधार :

यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि " सुरतरंगिनी " का द्विवतीय अध्याय रागाध्याय है और उस का वर्ण्य-विषय " संगीत-रत्नाकर " के " रागविवेकाध्याय " से भिन्न है । यह भी दृष्टिगत किया गया है कि लखपतिसिंह ने " रागाध्याय " में पुत्र-भार्या-पद्धति के अनुसार राग-रागिनियों का वर्गीकरण कर के उन के सुंदर, सरस देव-देवी-रूपों का काव्यात्मक वर्णन किया है । " सुरतरंगिनी " के अंत में कवि ने, तानसेन के मत को ध्यान में रख कर राग, गीतादि के हाव, भाव ~~रू~~ और रस का वर्णन करने का भी उल्लेख किया है, जिस से यह स्वाभाविक शंका होती है कि उन्होंने " रागाध्याय " में तानसेन के किसी संगीत-ग्रन्थ का शास्त्रीय आधार लिया होगा । तानसेन ने " हिय हुलास " तथा " रागमाला " नामक रचनाओं में राग-रागिनियों का वर्णन पुत्र-भार्या-पद्धति के अनुसार किया है । [९] पंडित भातखंडे जी ने लिखा है कि तानसेन कृत " रागमाला " के द्विवतीय अध्याय में, " संगीत-रत्नाकर " के राग समझने योग्य न होने से, तानसेन ने अपनी ओर से रागों का मिश्रण बताया है । [१०] तानसेन की हिन्दी रचनाओं में

ooooo

९ (अ) " भारतीय साहित्य और संस्कृति ", निबंध-संग्रह में संग्रहीत " तानसेन की दुर्लभ कृतियाँ " शीर्षक निबंध, ले० डॉ० मदनगोपाल गुप्त, पृ० १४८ से १५१ ।

(आ) " मध्यकालीन हिंदी काव्य में भारतीय संस्कृति", ले० डॉ० मदनगोपाल गुप्त, पृ० ५५०-५५१ ।

१० " तानसेन के नाम से जो एक " रागमाला " छपी है उस में - - - रत्नाकर के राग समझने योग्य न होने से रागाध्याय अपनी ओर से लगाया है, उस में रागों का मिश्रण बताया है।" ("भातखंडे संगीत-शास्त्र ", भाग-२, पृ० २९)

रागिनी टोडी का रूप-वर्णन प्राप्त होता है जो उन की इसी रचना से लिया गया है। [११] इस से यह स्पष्ट होता है कि महाराव लखपतिसिंह ने " सुरतरंगिनी " के द्वितीय अध्याय के लिये, लोकप्रसिद्ध, एवं तानसेन, दामोदर मिश्र [१२] आदि के ग्रंथों में समादृत ऐसी पुत्र-भार्या-पद्धति का आधार लिया है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार संगीत-शास्त्र विषयक अपने ग्रंथ की रचना में लखपतिसिंह ने तद्विषयक प्रसिद्ध शास्त्रीय ग्रंथों का आधार लिया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम और तृतीय अध्यायों की विषय-वस्तु में " संगीत-रत्नाकर " का अनुसरण किया गया है। परंतु उस के द्वितीय अध्याय, रागाध्याय की विषय-वस्तु, " संगीत-रत्नाकर " से नितान्त भिन्न है। पुत्र-भार्या-पद्धति के अनुसार राग-रागिनियों का वर्गीकरण और उन का रूप और शृंगार-वर्णन " संगीत-रत्नाकर " में नहीं मिलता। संभवतः बाद की रचनाओं में, " संगीत-रत्नाकर " से भिन्न, यह पद्धति जोड़ी गई है। संगीत-सम्राट् तानसेन की " रागमाला " में ही नहीं, उस काल के संस्कृत-ग्रन्थों में भी यह पुत्र-भार्या-पद्धति मिलती है। इस से एक ओर तो यह फलित होता है कि राग-रागिनियों का सुंदर, कल्पनामय वर्णन करने की यह पद्धति काफ़ी लोकप्रिय हो गई थी तथा

ooooo

११ " टोडी रागणी अलापत गावत बीन बजावत
उपवन मृगन रिझावत।
उज्वल बसन पहर केसर करपूर चर्चित रतनन
आभूषन तानसेन तान साजत ।। "
(" संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएँ ", सं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, तानसेन, छंद ८७, पृ० १०३)

१२ द्रष्टव्य, " संगीत-दर्पण ", पं० दामोदर मिश्र विरचित, अनु० विश्वम्भरनाथ भट्ट, संगीत कार्यालय, हाथरस, प्रकाशन, १९५० ।

दूसरी ओर यह भी निष्कर्ष निकलता है कि लखपतिसिंह ने अपनी रचना में उस का उचित स्थान रख कर अपनी अध्ययन-शीलता और काव्य-मर्मज्ञता का परिचय दिया है । " संगीत-रत्नाकर " जैसे प्रसिद्ध, समादृत संगीत-शास्त्र विषयक ग्रन्थ का भी उन्होंने आवश्यकता के अनुसार ही अनुसरण किया है और उस की परवर्ती मान्यताओं को भी स्थान दे कर उन्हों ने अनुवादक का नहीं बल्कि एक सजग विवेचक का कार्य किया है । यह तथ्य विचारणीय है कि लखपतिसिंह " संगीत-रत्नाकर " की प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा से प्रेरित हो कर, उस के अनुसार सात अध्याय की रचना करने को उद्यत हुए थे, परंतु विषय की दुर्बोधता और अप्रसिद्धि तथा अपनी काव्यगत अभिरुचि के कारण ही, उन्हों ने अपने ग्रंथ को सात के बदले तीन अध्यायों में समाप्त कर दिया । एक दृष्टि से, इसे संगीत-शास्त्र के कठिन विषय को सरल और बोधगम्य बनाने का ही प्रयत्न कहा जा सकता है ।

उक्त निष्कर्षों के आधार पर " सुरतरंगिनी " की विषय-वस्तु में हुए परंपरा-निर्वाह और उसमें कवि के प्रदेय पर सम्यक् विचार करने के लिये, उसकी समग्र विषय-वस्तु को दो विभागों में पृथक् पृथक् देखना आवश्यक है । एक: (क) " सुरतरंगिनी " का शास्त्रीय अंश और दूसरा, (ख) काव्यात्मक अंश। क्रमशः दोनों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

(क) " सुरतरंगिनी " का शास्त्रीय अंश :

यह दृष्टिगत किया गया है कि " सुरतरंगिनी " के प्रथम एवं द्वितीय अध्यायों में संगीत-विषयक शास्त्रीय चर्चा की गई है । इन अध्यायों में लखपतिसिंह ने नाद, श्रुति, काल, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, तान, प्रस्तार, नष्ट, षड्मेरु, आलाप, गमक, गायक के दोष एवं गुण तथा सदोष एवं अदोष गायन आदि का शास्त्रीय वर्णन किया है ।

P/Th 2502
Smt. HANSA MEHTA LIBRARY
151
UNIVERSITY OF BARODA

कवि ने शास्त्र-विषयक इस चर्चा में कोई नई बात कही है या नहीं, उस पर विवेचन करना एक तो प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की विषय-परिधि के बाहर की वस्तु है, दूसरा संगीत-विषयक शास्त्रीय ज्ञान भी लेखक की सीमा के परे है । इसलिये " सुरतरंगिनी " की संगीत-शास्त्र विषयक नवीनता की चर्चा यहाँ अनधिकार चेष्टा ही होगी । फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि शास्त्र-निरूपण सरल शब्दों एवं स्पष्ट शैली में किया गया है । " संगीत रत्नाकर " में से संगीत-शास्त्र विषयक जितने भी मुख्य एवं आनुषंगिक अंगों को कवि ने निरूपित किया है उन्हें उसी के दृष्टिकोण एवं क्रम के अनुसार रखा है । परिणामस्वरूप इस निरूपण का संपूर्ण अंश वस्तुमूलक, वर्णनात्मक एवं इतिवृत्तात्मक होने के कारण अध्ययन का ही विषय बन सका है, रसास्वाद का नहीं । यहाँ कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

" आलापन अरु गमक ए पंचगीत परमानं ।
ग्रंथ रीति सों कहत अब श्रवनि सुषद सुषदान ।।१।।

—।। अथ आलाप लछनं ।। दोहा ।।
" राग रूप को प्रगट करि नीके देई दिषाई ।
सो रूपक आलाप हैं कहत ग्रंथ मत पाई ।।२।।
ग्रंथनि में सब कहत हैं वाके चारि स्थान ।
इक थाई विय अर्ध त्रय अर्धा अर्ध सुजान ।।३।।
चौथो द्विगुनित कहत है लछन लछ सुजान ।
तिनके अब सुनि कहत हौं भिंन भिंन परमानं ।।४।। "

इस प्रकार प्रथम और तृतीय अध्याय में शास्त्रीय विषय का वस्तुकथन ही प्रमुख बन गया है ।

" सुरतरंगिनी " का द्वितीय अध्याय है " रागाध्याय " ।

कुल १३८० छंदों के इस समग्र ग्रंथ में से ७३२ छंद, केवल इसी रागाध्याय के हैं । अपने आधार-ग्रंथ से भिन्न इस अध्याय में, लखपतिसिंह ने राग-रागिनियों के वर्गीकरण की लोकप्रचलित [illegible] पुत्र-भार्या-पद्धति का आधार ग्रहण किया है । इस अध्याय के वर्ण्य-विषय का स्वरूप समझने के लिये इस पद्धति की शास्त्रीयता, लोकभोग्यता एवं प्रसिद्धि और लखपति द्वारा किये गये तद्विषयक परंपरा के निर्वाह तथा इस अध्याय के काव्यगत मूल्य पर विचार कर लेना आवश्यक है ।

पुत्र-भार्या-पद्धति की शास्त्रीयता :

संगीत ग्रंथों के अनुसार रागरागिनियों के वर्गीकरण की इस पद्धति के सम्बन्ध में दो मत प्रसिद्ध हैं, एक शिवमत और दूसरा हनुमंत मत । [१३] शिवमतानुसार मुख्य राग छः हैं और रागिनियाँ छत्तीस तथा हनुमंत मतानुसार उन की संख्या क्रमशः छः और तीस है । इस के अतिरिक्त दोनों मतों में मुख्य छः रागों के नामों में भी भिन्नता है । यहाँ इन दोनों मतों के [illegible] के वर्गीकरणों को प्रस्तुत किया जाता है, जिन्हें संक्षेप में दृष्टिगत कर लेना आवश्यक है :

(एक) <u>शिवमतानुसार</u> : श्री, वसन्त, भैरव, पंचम, मेघ तथा बृहन्नार ये मुख्य छः राग हैं और प्रत्येक राग की छः छः रागिनियाँ हैं : [१४]

(१) श्री राग की	:	माल श्री, त्रिवेणी, गौरी, केदारी, मधुमाधवी और पहाड़ी ।
(२) वसन्त राग की	:	देशी, देवगिरी, वराटी, तोडी, ललिता और सैंधवी ।
(३) भैरव राग की	:	भैरवी, गुर्जरी, रामकिरी, गुणकिरी, बंगाली और सैंधवी ।

००००००

१३ " संगीत-दर्पण ", दामोदर पंडित, पृ० ७४ से ७५

१४ वही, पृ० ७४-७५

(४) पंचम राग की : विभाषा, भूपाली, कर्णाटी, बड़हंसिका, मालवी और पटमंजरी ।

(५) मेघ राग की : मल्लारी, सौरटी, सावेरी, कौशिकी, गान्धारी और हरशृंगारी ।

(६) नट्ट नारायण राग की : कामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सारंगी और नट्ट हंबीरा ।

(दो) हनुमंत मतानुसार : भैरव, कौशिक, हिंडोल, दीपक, श्री, और मेघ ये मुख्य छः राग हैं और प्रत्येक की पाँच पाँच रागिनियाँ बताई गई हैं जो इस प्रकार हैं :[१५]

(१) भैरव राग की : मध्यमादि, भैरवी, बंगाली, वराटि और सैंधवी ।

(२) कौशिक राग की : तोडी, खम्भावती, गौरी, गुणक्री और ककुभा ।

(३) हिंडोल राग की : बेलावली, रामकिरी, देशाख्य, पटमंजरी और ललिता ।

(४) दीपक राग की : केदारी, कानडा, देशी, कामोदी और नाटिका ।

(५) श्री राग की : वासन्ती, मालवी, मालश्री, धनासिका और आसावरी ।

(६) मेघ राग की : मल्लारी, देशकारी, भूपाली, गुर्जरी और टंकी ।

तानसेन कृत " हिय-हुलास " तथा " रागमाला " नामक

---

१५ संगीत-दर्पण, पृ० ७८-७९

रचनाओं में [१६] राग-रागिनियों के नाम और उन के सम्बन्ध हनुमंत मत के अनुसार हैं । इन दोनों मतों के अनुसार पुत्र-भार्या-पद्धति से राग-रागिनियों का वर्गीकरण प्रसिद्ध है । इस पद्धति की शास्त्रीयता अथवा इस प्रकार के वर्गीकरण के सम्बन्ध में संगीतज्ञों की धारणाएँ विचारणीय हैं । प्रसिद्ध संगीतज्ञ पंडित विष्णुनारायण भातखंडे जी लिखते हैं :

" गायकों के मुँह से हम अनेक राग, रागिनी, पुत्र, भार्या, इत्यादि के नाम सुनते रहे हैं । इस से मन में सहज ही यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि राग और रागिनी का अन्तर किस प्रकार माना जाता है ? - - - - - - जो लोग बुद्धिमान हैं, वे भिन्न भिन्न कारण बतलाते हैं । जैसे राग, यह पुरुष है, वह गम्भीर प्रकृति का होगा , वह सावकाश तथा प्रशस्त रूप से गाया जायगा और सम्पूर्ण होगा । - - - - रागिनी में राग की प्रकृति थोड़ी सी दिखाई देगी, उसका चलन जरा चपल होगा । उस का उपयोग शृंगार की ओर अधिक होगा । यह धारणा युक्ति संगत है, यही कहना पड़ेगा, परंतु क्या इसे ग्रन्थाधार प्राप्त है ? यह प्रश्न है । - - - - - - हमारे प्रचार (मत) में तो राग और रागिनी में तात्त्विक अन्तर समझ कर गाना तो अलग रहा, उसे समझाने वाले गायक भी तुम्हें नहीं मिलेंगे । - - - यह नहीं प्रत्युत यह माननेवाले भी मिलेंगे कि पुल्लिंगी नाम हो तो राग तथा स्त्रीलिंगी हो तो रागिनी ; इस के सिवाय उन्हें दूसरा कारण पता

ooooo

१६ " भारतीय साहित्य और संस्कृति ", डॉ० मदनगोपाल गुप्त, निबंध, " तानसेन की दुर्लभ कृतियाँ ", पृ० १४८ से १५१

नहीं है । " [१७]

" मारिफुन्नगमात " के लेखक राजा नवाब अली पुत्र-भार्या-पद्धति के विषय में लिखते हैं :

"- - - हिन्दुस्तानी संगीत में छ राग हैं और उसकी तीस रागिनियाँ हैं । - - - ध्यान देने की बात है कि सात स्वरों के राग से छः अथवा पाँच स्वरों के राग का बनाया जाना संभव है । लेकिन यह समझ में नहीं आता कि ५ स्वरों के राग से संपूर्ण रागिनियों का निकाला जाना किस प्रकार संभव हुआ । यह कैसे संभव है च कि खुद भैरव की रिखब तो कोमल और सैंधवी, मदमात तथा बंगाल जो उस से निकाली गई हैं, उन में रिखब तीव्र रहे या भैरव की गंधार तो तीव्र हो और सैंधवी, मधुमाद, बंगाल तथा भैरवी की गन्धारें कोमल हो जावें । " [१८]

इन प्रसिद्ध संगीतज्ञों ने पुत्र-भार्या-पद्धति की वैज्ञानिकता एवं व्यावहारिकता के विषय में शंका उठाई है । परंतु इस के साथ यह भी विचारणीय है कि संगीतसम्राट् तानसेन एवं " संगीत-दर्पण " के रचयिता पंडित दामोदर मिश्र ने अपने अपने ग्रन्थों में इस पद्धति का अनुसरण किया है । दामोदर पंडित द्वारा प्रस्तुत हनुमन्त मत और आगे चल कर प्रत्येक रागिनी के स्वरूप वर्णन का विस्तृत विवेचन और तानसेन की उपरि निर्दिष्ट रचनाओं से प्राप्त तथ्यों में एकता है । अतः यह सिद्ध हो जाता है कि राग-वर्गीकरण की यह पद्धति एतद्विषयक

००००००

१७ " भातखंडे संगीत-शास्त्र", प्रथम भाग, पृ० ३६-३७, ले० विष्णुनारायण भातखंडे, द्वितीय संस्करण, १९५६ ।

१८ " मारिफुन्नगमात ", प्रथम भाग, पृ० २३-२४, ले० राजा नवाब अली खाँ, संगीत कार्यालय, हाथरस ।

विद्वानों में प्रतिष्ठित रही है । इस की अपनी निश्चित परंपरा भी रही है । संगीत के क्षेत्र में ही नहीं मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने भी इस का काव्योचित सम्मान किया है । १९ इस की शास्त्रीयता का जो भी स्वरूप हो, परंतु उस के मूल में परिवार जनों में दीख पड़ने वाली विभिन्न प्रकार की समानताओं की धारणा अवश्य रही है । परिवार के सदस्यों में शारीरिक एवं मानसिक समानताओं के दर्शन होते हैं तो राग और उस की रागिनियों के बीच उस के मूल वादी और अनुवादी स्वरों की प्रकृति में सामंजस्य दिखाई पड़ेगा । कदाचित् राग और रागिनियों में तात्विक अंतर हों या न हों परंतु उन में प्रभावगत अंतर अवश्य होगा । वस्तुतः राग और रागिनियों के स्वरूप एवं व्यक्तित्व की जो कल्पना की गई उस का मूलाधार उन की यही प्रभावात्मकता है । यही कारण है कि पुत्र-भार्या-पद्धति लोकप्रसिद्ध रही है । कवियों द्वारा किये गये उन के मनोज्ञ, सरस एवं सजीव वर्णनों ने इस पद्धति को लोकमान्य बनाया है । महाराव लखपतिसिंह ने राग-रागिनियों के वर्गीकरण का आधार प्रस्तुत करते हुए लिखा है :

" नारी पुरुष विहाह है तिय तिय में नहिं होई ।
या ते ए सुतनाहिं धरे प्रश्न बडो हीय जोई ।।
एक ठोर सुत बरन कैं तीय वरनी पुनि सोई ।
यह कैसें उर आनीयें प्रश्न महा हिय जोई ।। "

(" सुरतरंगिनी ", रागाध्याय, छं० ११८-११९)

तात्पर्य यह है कि ~~महा~~ महाराव लखपतिसिंह ने रागों के वर्गीकरण की इस लोगमान्य, प्रसिद्ध परंपरा को अपने संगीतग्रंथ में स्थान दे कर

ooooo

१९ " मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति ", ले० डॉ० मदनगोपाल गुप्त, पृ० ५१८

" संगीत-रत्नाकर " के अतिरिक्त तानसेन और दामोदर पंडित जैसे अन्य संगीतज्ञों के ग्रन्थों का भी सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत किया है । पुत्र-भार्या-पद्धति का जो स्वरूप " सुरतरंगिनी " के द्वितीय अध्याय में प्रस्तुत किया गया है, वह इस प्रकार है :

लखपतिसिंह ने " रागाध्याय " के आरंभ में ही यह लिख दिया है कि राग एवं रागिनियाँ देव-देवी रूप हैं, जैसे भगवान निर्गुण के अतिरिक्त सगुण भी होते हैं, उसी प्रकार राग-रागिनी का गुणवान् रूप भी होता है :

" हरि हरि रागरू रागिनी, तिन के अर्थ कहंत ।
संबंधी अरु ईस पछ, बुधि बल हर्ष लहंत ।।
संग्या रा(ग) रु रागिनी, और रूप गुनवंत ।
निर्गुन सगुन रूप सो, नाम अंस भगवंत ।। "

(" सुरतरंगिनी", रागाध्याय, छंद संख्या ५,६)

लखपति ने मुख्य छः रागों में भैरव, मालकौंस, हिंडोल, दीपक, श्री, मेघ को माना है तथा उन की भार्याओं का उल्लेख इस प्रकार किया है :

(१) भैरव राग की भार्याएँ			:	मध्यमादि, भैरवी, बंगाली, वैरारी और सैंधवी ।
(२) मालकौंस	"	"	:	तोडी, खमाइची, गौरी, गुण कली और ककुभ ।
(३) हिंडोल	"	"	:	बिरावर, रामकली, देवसाख, पटमंजरी और ललित ।
(४) दीपक	"	"	:	केदारा, कान्हरा, देसी, कामोद और नाइकी ।
(५) श्री राग	"	"	:	बसंत, मालव, मालश्री, आसावरी और धनासिरी ।

(६) मेघ राग की भार्याएँ : मलार, भौपाली, गूजरी, टंक और सारंग ।

इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि लखपतिसिंह ने किंचित् परिवर्तन के साथ हनुमंत मतानुसार पुत्र-भार्या-पद्धति की परंपरा का निर्वाह किया है । रागाध्याय में कवि ने राग और रागिनियों के उपरांत उन के पुत्ररागों एवं उन की रागिनियों का भी विस्तृत वर्णन किया है । भैरव के पुत्रों में देसकार, विभास, खटराग, बरवे और बड़-हंस को गिनकर उन भार्याओं में क्रमशः जैजैवंती, ईमन, केदारा, पूर्वी, जेतश्री, सोरठ का उल्लेख किया है । इस पारिवारिक वर्गीकरण के पश्चात् लखपतिसिंह ने सालगि और संकीर्ण रागों के दो अन्य वर्गों में भी विभाजित किया है । जैसे —

" जो कही ये षट सुद्ध हैं तो क्यौं मिश्र कहे सु ।
असमन रन ए बचन हैं संसय रूप लहेसु ।।
या तैं सुनि अब शुद्ध कों अरथ और हिं होई ।
जिते रूप मिलि के भयो वह सुद्ध अंग जोई ।।
या चारज के रूप ते इक इक अधिक जु रूप ।
सालग संकीरन, कहें सो वह रूप अनूप ।। "

(" सुरतरंगिनी ", रागाध्याय, छं० ५२ से ५४)

इस प्रकार लखपतिसिंह ने रागों को मात्र पुत्र-भार्या-पद्धति से ही नहीं, शुद्ध और संकीर्ण रागों की दृष्टि से भी वर्गीकृत किया है । हनुमंत मत के अतिरिक्त पुत्र-भार्या-पद्धति के शिवमत का भी उन्हों ने वर्णन किया है । इस प्रकार लखपतिसिंह ने रागाध्याय में विषय का व्यापक अध्ययन किया है ।

तृतीय अध्याय :

" सुरतरंगिनी " का तृतीय और अंतिम अध्याय प्रकीर्ण

विषयक है । संगीत सम्बन्धी प्रकीर्ण बातों में उन्हों ने आलाप और गमक के स्वरूप एवं भेदों को तथा गायन के दोषों को गिनाया है । अंत में अदोष गायन की संक्षिप्त चर्चा के साथ अध्याय समाप्त होता है ।

इस अध्याय की विषय-वस्तु लेखक के अध्ययन की सीमा से परे है, अतएव इस के सम्बन्ध में विवेचन करना अनुचित होगा । परंतु यहाँ एक तथ्य की ओर लक्ष्य खींचना उस का कर्तव्य है । वह यह कि इस अध्याय में भी लखपति सिंह एतद्विषयक शास्त्रीय परंपरा का बड़ी श्रद्धा से उल्लेख करते हैं । निम्नलिखित छंदों में इस का प्रमाण द्रष्टव्य है :

" आलापन अरु गमक ए पँचगीत परमानं ।
ग्रंथ रीति सों कहत अब श्रवनिं सुषद सुषदान ।।
राग रूप को प्रगट करि नीके देई दिषाई ।
सोरूपक आलाप हैं कहत ग्रंथ मत पाई ।। "

कवि संगीत के " रीतिग्रन्थों " का प्रमाण दे कर ही चर्चा करते हैं । अंत में भी लिखते हैं :

" गमक भेद जो कहत हैं गई भेद त्यों जांनि ।
कहत कछु संछेप सों ग्रंथ रीति पहिचांनि ।। "

निष्कर्ष :

इस प्रकार " सुरतरंगिनी " का शास्त्रीय अंश संगीत-शास्त्र की परिपाटी के अनुरूप है । विषय के निरूपण में लखपतिसिंह सजग हैं । संगीत-शास्त्र के संस्कृत एवं व्रजभाषा के प्रसिद्ध शास्त्रीय ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्होंने लोकप्रसिद्ध संगीतपरंपरा को भी ग्रहण कर के ग्रंथ के इस अंश की उपयोगिता एवं व्यापकता का प्रमाण दिया है ।

(ख) " सुरतरंगिनी " का काव्यात्मक अंश :

" सुरतरंगिनी " के रागाध्याय में रागरागिनियों के पुत्र-भार्या-पद्धति के अनुसार किये गये विस्तृत वर्गीकरण के उपरांत उन के सौंदर्य एवं शृंगार के सुंदर, काव्यात्मक छंद भी मिलते हैं । रीतिकाल के कवि की शृंगार-प्रियता, और उस की सुंदर कलात्मक अभिव्यक्ति का अच्छा परिचय मिलता है । रागरागिनियों की प्रणयक्रीड़ाओं का, रागिनियों के रूपसौंदर्य का, उन की विरहानुभूति का तथा तज्जन्य कृषकायता का और साथ ही रागों के गानसमय के अंतर्गत प्राकृतिक दृश्यों का भावपुष्ट एवं कलात्मक वर्णन कवि ने किया है ।

राग भैरव और उस की भार्या रागिनी भैरवी का रूप-वर्णन इस प्रकार किया गया है :

" जटा जूट में गंगत्रय, लोचन चंद लिलाट ।
फनि मनि कुंडल जोतिश्रव, सूल डबरू मुष पाट ।।५४०।।
भस्म अंग मुष पे लसें नागचर्म बैठंत ।
इहिं विधि भैरव राग हैं त्रैवट मुष उघटंत ।।५४१ ।।"

यह स्पष्ट किया गया है कि लखपतिसिंह ने संगीत-शास्त्र विषयक चर्चा में अपने पूर्व की प्रसिद्ध परंपराओं का यथोचित निर्वाह किया है । इतना ही नहीं वे " संगीत-दर्पण " में किये गये प्रणयक्रीड़ा के वर्णन का भी समुचित उपयोग कर सके हैं, जो उन की इस प्रथम काव्य-रचना के सर्वथा अनुकूल ही माना जा सकता है । राग-रागिनी के जिस प्रणय-चित्र का अंकन संस्कृत में दामोदर पंडित ने किया है, वह इस प्रकार है : [२०]

" पत्या सहासं परिरभ्य कामं । स चुम्बिताऽस्या कमलायताक्षी ।
स्वर्णच्छविः कुंकुमलिप्त देहा । सा मध्यमादिः कथिता मुनींद्रैः ।।"

२० " संगीत दर्पण ", रागाध्याय, " ध्यान " के अंतर्गत, " मध्यमादि रागिनी ", पृ० ८५

लखपति भी इसी राग भैरव और रागिनी मध्यमादि की प्रणयक्रीड़ा का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

" आलिंगन चुंबन करे, प्रिय मुष हसि आनंद ।
नेत्र कंज हर मोच दुंष, कंचन तन सुष कंद ।।५४२।।

कुंकम अलंकृत अंग में हसिहसि बोले बैन ।
मध्यमांध मन हरत हैं भैरव पीय सुष देन ।।५४३।।

फटिक पीठ कैलास में बनि ठनि हास विलास ।
नगजासी सिसिमुष चपल, चारु अंग परकास ।।५४४।।

सिवपूजे ले कंजकर, इंदीवर से नेन ।
ताल बाल कर मेली ये मुसिकनि हे मृदु बैन ।।५४५।।

पूजि पूजि जीय मे प्रसन भैरव कों सुष देन ।
भैरव की तिय भैरवी, मृगदृग दीरघ नैन ।।५४६।। "

रागिनी वैराटी का यह चित्र देखनेवाले की आँखों को ललचाता है :

" चतुराई सो चोर कर कंचन कर भनमकार ।
बिथुरी सुथरी अलक सिर चित चोरन परकार ।। ५४८।।

भनलके अंग अंग बसन में कांनन फूल विचित्र।–
ललचावे लषि चित्त कों वैराटी को चित्र ।।५४९।। "

रामकली रागिनी का रूपवर्णन सुंदर बन पड़ा है :

" सोभै सोनै तें सरस अंग अंग सोभा अंग ।
नीलनि चोलनि मैं लसे ज्यों तड़ि घन के संग ।।५७१।।
ज्यों ज्यों पाइन पीय परे त्यों त्यों मन निठराई ।
रामकरी तीय मानिनी पीय मन लखि अकुलाई ।।५७२।।"

नटकल्याण का गोरे और लाल रंगों से युक्त चित्र द्रष्टव्य है :

" अरुन बसन अंग में लसे सोहत गोरे गात ।
भाल लाल टीको लसे अरुन नैंन सरसात ।।६१९।।"

कवि ने किसी किसी राग के गान-समय के साथ प्रकृति का भी यथेष्ट चित्र अंकित किया है :

(१) मालकौंस की रागिनी खमाइची के विषय में :

" अभिनव जोबन गौरतन राजित दुति अभिराम ।
कमल खिले सूरज उदित प्रात गाई सुखधाम ।।६५२ ।।"

(२) गौड़श्री के विषय में :

" उठे सघन घनघोर के बोलत मुदित मयूर ।
नचत जोग संजोग लखि गौडसिरी रुचिपूर ।।६६६।।"

इस प्रकार लखपतिसिंह ने रागिनियों के रूप, रंग और प्रणय के सुंदर चित्र दिये हैं। पंडित विष्णुनारायण भातखंडे जी ने कृष्णानन्द व्यास रचित " संगीत कल्पद्रुम " ग्रंथ का परिचय देते हुए लिखा है कि :

" संगीत कल्पद्रुम " में " राग मिलाप " शीर्षक के अंतर्गत कुछ हिंदी दोहे दिये गये हैं - - - - - कल्पद्रुम में भी राग मिश्रण प्रकरण

संस्कृत में लिखा हुआ मैंने देखा है । " [२१]

कल्पद्रुमकार ने " गुणक्री " रागिनी का विरहवर्णन इस प्रकार किया है : [२२]

" तिय बैठि मलीन धरे पटके बिथुरी सिर केस तज्यो अलके ।
मुख नीचो किये मुरझाय रही जुग नैन वहैं सरकी झलके ।।
तन छीन खरी छवि छीन परी लखिके दुःख सोचत है स अलके ।
विरहागनतैं अति व्याकुल बाल वियोग भरी गुन की कलिके ।।"

यह " गुणक्री " वही गुनकली रागिनी है जिसकी विरहजन्य कृशता का लखपति इस प्रकार वर्णन करते हैं :

" विरह विथा तनहिनता भइ देह दुति छीन ।
निपट मलीन रु हिनमत विथुरे केस नवीन ।।५६२।।
देषि सुदेस सुवेस दृग राते करुणा लीन ।
रुपें मुष रु मेनदुष सुधि बुधि कर अति हीन ।।५६३।।
देषि गुनकरी रागिनी प्रीतम बिरह अधीन ।
गावत में मन हरत सब मालकौंसि तीय कीन ।।५६४।।"

रागिनी गुणकली के वियोग शृंगार के ये दोनों चित्र सहज ही तुलनीय हैं । स्पष्ट ही, कल्पद्रुमकार की तुलना में कवि लखपति अधिक कल्पनाशील, हृदयग्राही, अनुभाव-वर्णन से युक्त करुण चित्र अंकित कर सके हैं । संस्कृत के कवि क्षेमकर्ण रचित " रागमाला " में " गुंडग्री " अर्थात् इसी इसी " गुणक्री " अथवा " गुणकली " का सुन्दर चित्रण मिलता

oooooooo

२१ " भातखंडे संगीतशास्त्र ", दूसरा भाग, पृ० २९६, लेखक पंडित विष्णुनारायण भातखंडे ।

२२ वही, दूसरा भाग, पृ० १९२

है, [२३] जिसको पढ़ने से प्रस्तुत विवेच्य कवि के काव्यत्व का समुचित मूल्यांकन किया जा सकता है ।

विरहिणी का यह अनुभाव और रूपवर्णन भी द्रष्टव्य है:

" पीय बियोग तें गद्‌गद्यो दुष की नांहि सम्हारि ।
बैठ रही सिर नाइकैं धूसरिं भरी सुनारि ।।५७५।।
छीन बाल वनमाल उर देत सषी मनधीर ।
बिथुरे सुथरे वार कटि हरि पट मंजर पीर ।।५७६।।""

चैती रागिनी की करुणा दशा का चित्र कवि कितने कम शब्दों में दे देता है :

" दीन छीन सुष हीनं मुष विरह भरी तन षीन ।
करुनामय सुधि करत पीय चैती दुषपथ लीन ।।६७५।।"

राग रागिनियों के अनुभाव एवं रूपवर्णन के कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं :

" षरे उनींदे नैंन अरु अरसोहैं मुष बैंन ।
पीय तन लागी आइकैं गाइ रिझावत सेन ।।५७६।। "

नायिका के शरीर एवं परिधान का रंगवर्णन :

" रति के हिय में चारु अति, करे सिंगार अनूप ।
गोरे तन सारी हरी देसी सुष दस रूप ।।५८७।।
पीत बसन तन बन फिरे पिकधुनि सुनि मुरझात ।
मन मे सुमिरे प्रीत में दुनो दुष सरसात ।।५८८।।"

oooooooo

२३ " छायायां कदलीवनस्य बसती कामांग संकोचिनी ।
गौरी मुक्त कचामरालगमना रक्तां बरैरावृत्ता ।।
तन्वीं सर्वगुणाग्रमंडित वपु: पीनातितुंगस्तनी ।
गुंडग्री कर पद्मवक्त्र सहिता प्रोक्ता महार्यै:परा ।।"
"भातखंडे संगीतशास्त्र " द्विवतीय भाग, पृ० १९४ से उद्‌धृत ।

राग नट की यह वीर मुद्रा :

" लोने अंग अंग पुर ढलें चढि तरंग रन रंग ।
लोह लाल गुलाल सों भर्यो बीर रस अंग ।।५९०।।

रूपवती नायिका संध्या समय में कैसा प्रकाश फैलाती है:

" ससिमुष मंडल जोति सों कानन कुंडल चारु ।
सांझ समे के संमेत में मारव(?) सुभग बिहार ।।५९७।।
लाल बाल कर कुंज सुभ द्रग विसाल मृगजाल ।
भूषन की दुति देह की निरषत होत निहाल ।।५९८।।"

विरह में नायिका का शरीर घास जैसा क्षीण हो गया है :

" तन की दुति लषि दुब सों अति नीकी सुषकार ।
प्रीतम सुमिरत विरह तें लटी देह निरधार ।।६०२।।
सोचति मन सुकपोल दुति फीकी परी निहारि ।
असुवन धोवत अंग उरज धनासिरी वरनारि ।।६०३ ।। "

रूपवर्णन करने के लिये कवि ने सधी हुई शब्दावली का सफल प्रयोग करके नायिका के चित्र को इस प्रकार उपस्थित किया है :

" प्रीतम के नित संग में कौतिग करत विहार ।
केस सुदेस सुबेस छबि सटकारे सुकुमार ।।६०९।।
सरद सुधाकर पुर्न की जौती दुति मुष चार ।
कुच उतंग कंचन कलस रस अनंग सुषसार ।।६१०।।
ईछन सीछन कंज से राजित है सु देन ।
देसकार सुष कार पीय बोलत अति मृदु बैन ।।५११।।
चंपा संपा देह दुति, पीय सो सरसे नेह ।
अधरनि लाली देषिकें अंग अंग विदेह ।।६१२।। "

यहाँ " सुदेस सुबेस ", " ईछन सीछन " और " चंपा संपा " विशिष्ट प्रकार के शब्दद्वयों द्वारा कवि ने अपनी उद्दिष्ट बात को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है ।

एक अन्य चित्र भी देखिये जहाँ रंगों द्वारा नायिका की शोभा का वर्णन किया गया है :

" अरुन बसन अंग में लसे सोहत गोरे गात ।
भाल लाल टीको लसे अरुन नैंन सरसात ।।६१९।।
तरुनी बेस किसोर दुति चंपक हरत रसाल ।
केस बेस मषतुल दुति हरे सुमृदुता बाल ।।६२१।।
अंग अनंग तरंग सों जगमग जोबन जोति ।
पंचम संग बनिता सरस रंग दुति भिलमिल होति ।।६२१।।"

कुछ दोहों में तो कवि ने थोड़े से शब्दों में भी नायिका के रंग-रूप को भर दिया है जो प्रसिद्ध कवि बिहारी की " गागर में सागर " भरने की क्षमता का आभास देता है : जैसे

" राजित पीत दुकुल दुति कंचन लागत फीक ।
जुवती संग सविलास लषि साम साम दुति लीक ।।६२३।। "

राग और उसके गाने के उचित समय का यह वर्णन प्रकृति का भी संक्षिप्त वर्णन बन गया है :

(१) " अभिनव जोबन गौर तन राजित दुति अभिराम ।
कमल षिले सूरज उदित प्रात गाई सुषधाम ।।६५३।।
सुनत देव गंधार कों होत महा आनंद ।
नरनारी के मन हरे उपजित परमानंद ।।६५४।। "

(२) " उठे सघन घनघोर के बोलत मुदित मयूर ।
नचत जोग संजोग लषि गौंडसिरी रनचिपूर ।।६६६।। "

रागिनी अहीरी के लिये राधा या गोपी की उचित कल्पना करके कवि गोपी विरह का सुंदर वर्णन करता है :

" मंथनी महि पर दधि भरे चपल मथ्यानी हाथ ।
चितवति अति हिं चाइ सौं देषत सुषमन साथ ।।६७६।।
जंघ जुगल छबि उरज लषि उपजित मनमथ आई ।
रूप सलिल में मीन से भये नैंन अति भाई ।।६७७।।
बरत सब सुष पाइकैं इहिं बिधि सौं सुनि मित्र ।
देषि रही री चाइ सौं राग अहीरी चित्र ।।६७८।।"

वर्षाकाल की सुंदर प्राकृतिक पृष्ठभूमिवाली रागिनी " सावंनी " का रूपवर्णन इस प्रकार किया गया है :

" आनंन ससि परकास दुति मुदित बगन की पांति ।
तड़ित तरफत भनरपत श्यान अंचल दुति फहरात ।।७०४।।
गौर अरनन सुभ गात जुग जंघा रंभा थंभ ।
देषत मनहर सावंनी सघन सोभ द्रुम दंभ ।।७०५।।

सारंग का यह विरह वर्णन भावोत्तेजक है :

" भरी विरह व्योहार में मार मार दुषदेत ।
बिकल बिलोकति पंथ पति आयो नहि संकेत ।।७०८ ।।
चितचित माभ अति नेह मित नैननि भरे सुनीर ।
कूकनि कल कल कंठ सौं बिकल जतन सषीतीर ।।७०९।।
ठाढि उपबन बिच लषि सुचिर सषीन के संग ।
कुसुमकली कर में भली रंगी कान के रंग ।।७१०।।

मध्यदिवस द्रुम छांह में सुमिरे हिय में नाह ।
अति बिधूवदन मलिन दुति सारंग गौर सदाह ।।७११।। "

रागिनी यमन को प्रिय के आगमन की आस है । इस भाव को कवि ने लोकप्रसिद्ध और सरल शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है :

" पीय आवन की आस हिय निस दिन अति रतिवंत ।
रतिवल्लभ सिंगार तन सोभा छटि दुतिवंत ।।७३०।।
संगरंग रति ढंग सुष विद्याकला अनूप ।
राजित ईमन चित्र यों देषि विचित्र सरूप ।। ७३१।। "

निष्कर्ष :

(१) इस प्रकार " सुरतरंगिनी " विशिष्ट प्रकार का संगीतशास्त्र विषयक ग्रंथ होते हुए भी इसमें सुंदर काव्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं, इसलिये शुद्ध काव्य की दृष्टि से भी लखपतिसिंह की कृतियों में उसका विशिष्ट स्थान है । " सुरतरंगिनी " के जिस काव्यात्मक अंश का यहाँ उल्लेख किया गया है उससे कवि के काव्यगुण का भी परिचय मिल जाता है । " सुरतरंगिनी " लखपतिसिंह की प्रथम रचना है । उनकी इस प्रथम कृति में अनेक सुंदर मुक्तक रचनाएँ बिखरी पड़ी हैं ।

(२) " सुरतरंगिनी " के इस काव्यात्मक अंश से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि शास्त्र-निरूपण में भी लखपति ने परंपरा का अन्धानुकरण अथवा अनुवाद-मात्र ही नहीं किया है, अपितु उन्हों ने संगीत विवेचन में मनोवैज्ञानिक एवं काव्यात्मक दृष्टि अपनाई है । परिणामस्वरूप वे बड़ी सुंदर मुक्तक काव्य-रचना कर पाये

हैं जिनकी काव्य-कला की चर्चा आगे की जायेगी ।

(३) " सुरतरंगिनी " के रागाध्याय में लखपतिसिंह के मुक्तक-काव्य सर्जन के अच्छे उदाहरण मिलते हैं । जिस प्रकार इस ग्रंथ के प्रथम और तृतीय अध्याय शास्त्रीय विषय-वस्तु के निरूपक होने से अकाव्यात्मक हैं, उसी प्रकार उसके " रागाध्याय " का यह अंश अशास्त्रीय विषय-वस्तु के मुक्त आलेखन के कारण ही काव्यात्मक है ।

(४) शास्त्र-निरूपण से अधिक काव्य-सर्जन में ही लखपतिसिंह की शक्ति और अभिरुचि केन्द्रित होती दिखाई पड़ती है । इस दृष्टि से " सुरतरंगिनी " का यह काव्यात्मक अंश उन के साहित्यिक कृतित्व के अंतर्गत प्रथम सोपान सिद्ध होता है ।

२ रस तरंग

लखपतिसिंह का दूसरा शास्त्रीय-ग्रन्थ " रसतरंग " है । यह काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थ है जिसमें नायिकाभेद एवं शृंगार रस की शास्त्रीय चर्चा की गई है ।

रसतरंग का आधार :

" रसतरंग " के परिचय के अन्तर्गत हम यह दृष्टिगत कर

'रस तरंग'
के
नामकरण के लिये
अन्तः साक्ष्य
(चित्र संख्या 1 से 4)

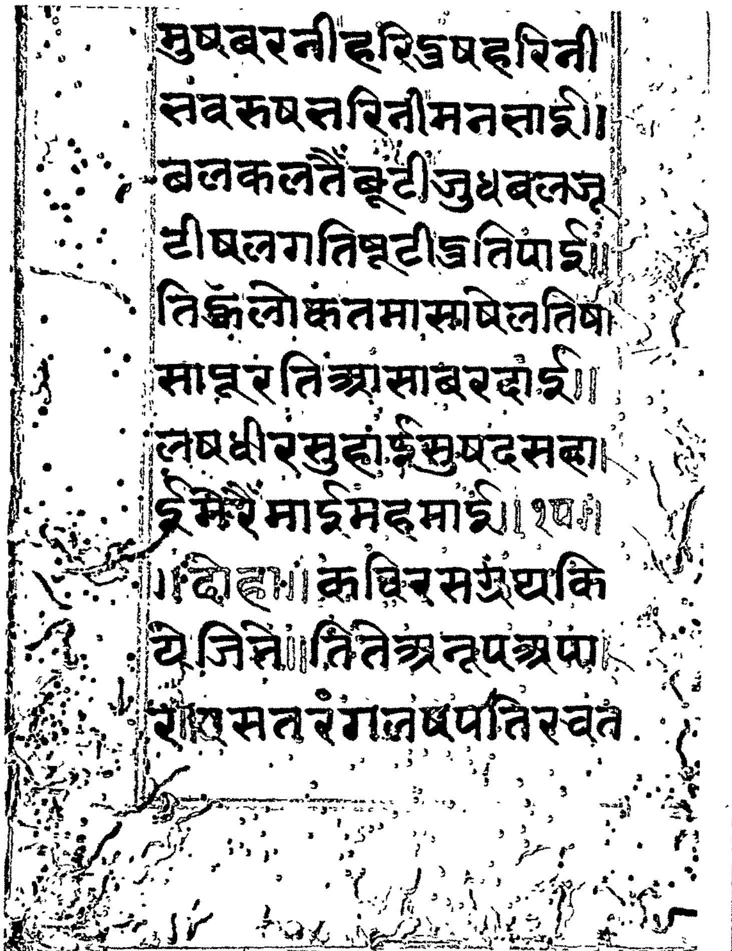

मुषबरनीहरिछषहरिनी
सवरुषस्तरिनीमनसाई॥
बलकलतैं बूटीजुथबलजू
टीषलगतिषूटीछतिपाई॥
तिक्कलोकंतमासाषेलतिषा
सापूरतिआसाबरदाई॥
लषधीरसुदाईसुषदसदा
ईमेरैमाईमदमाई॥१५॥
॥दोहा॥ कविरसग्रंथकि
ये जिते॥ तितिअनृपअपा
रा॥रसतरंगलषपतिरवत

(चित्र संख्या 1)

(चित्र संख्या 2)

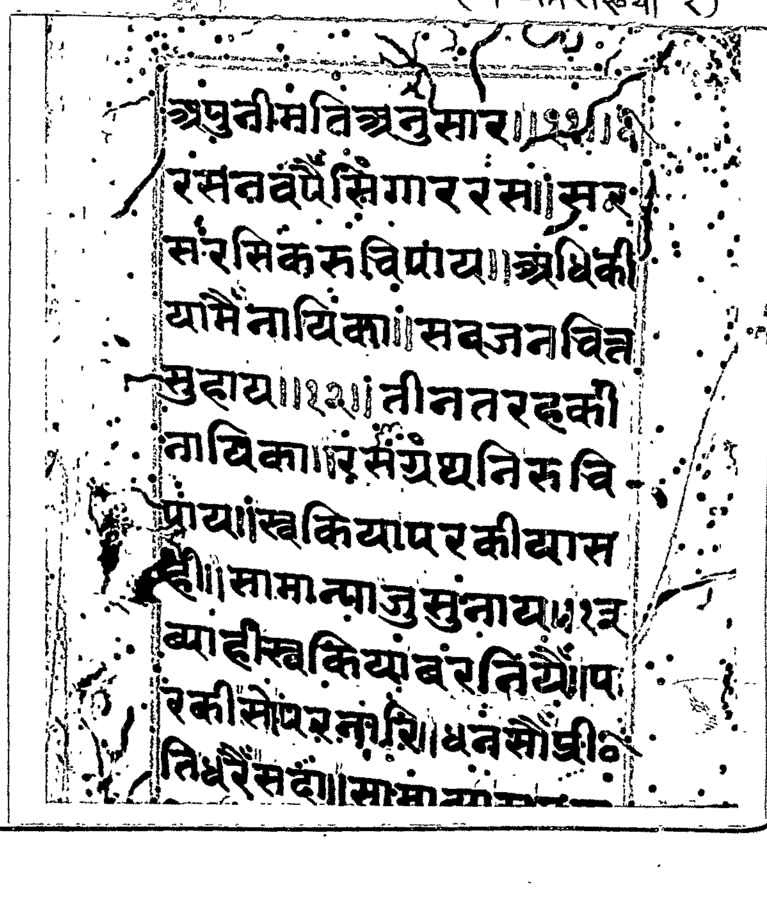

अपुनीमतिअनुसार॥१७॥
रसनवपैसिंगाररस॥सुर
सरसिकरुचिपाय॥अधिकी
यामैनायिका॥सबजनचित्त
सुदाय॥१८॥तीनतरहकी
नायिका॥रसग्रंथनिरुचि
पाय॥स्वकियापरकीयास
ही॥सामान्याजुसुनाय॥१९
ब्याहीस्वकियाबरनियैं॥प
रकीसोपरनारि॥धनसौंप्री
तिधरैंसदा॥सामा

आये हैं कि कृति के अंत में कवि ने उसके आधार-ग्रन्थ का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है :

" कीन्हौं लषपति कछपति, भलै सुनौं कवि भूप ।
सुंदरक्रित अनुरूप यह रसतरंग रस रूप ।।४३५ ।। "

परंतु लेखक ने प्रस्तुत रचना की जिस प्रतिलिपि को अध्ययन का आधार बनाया है और जो संवत् १८०५ की अर्थात् कवि की समकालीन है और इस कारण विश्वसनीय भी, उसके अंतिम पृष्ठ पर दिये गये अंतिम छंद (संख्या ४३५) और पुष्पिका के मध्य में "   " ऐसा चिह्नित करके उस पृष्ठ के शीर्षस्थान पर छोटे छोटे अक्षरों में निम्नलिखित छंद भी लिखा गया है : [२४]

" महाराउ लषपति कियौं । शुभ लषपति सिंगार ।
रच्यौं देषि रसमंजरी, सकल रसनि कौं सार ।।४३६।।"

ये दोनों छंद " रसतरंग " के आधार-ग्रंथ संबंधी भिन्न भिन्न मत प्रदर्शित करते हैं । इसलिये प्रस्तुत विवेच्य कृति के आधार-ग्रन्थ के बारे में किसी एक मत को निश्चित करना आवश्यक प्रतीत होता है जिसके आधार पर लखपतिसिंह द्वारा किये गये शास्त्र-निरूपण संबंधी निष्कर्षों पर पहुँचा जा सके ।

सर्व प्रथम यह निर्णित किया जाना आवश्यक है कि उक्त दोनों में से कौन सा छंद कवि द्वारा लिखा गया है या दोनों उन्हीं के लिखे हुए हैं । अर्थात् यह निर्णय करना आवश्यक है कि अपनी कृति के आधार-ग्रन्थ के विषय में कवि का अभिमत क्या है ।

ooooooo

२४ " रस तरंग " के इस अंतिम पृष्ठ के लिये चित्र संख्या ४ द्रष्टव्य है ।

(चित्रसंख्या ३)

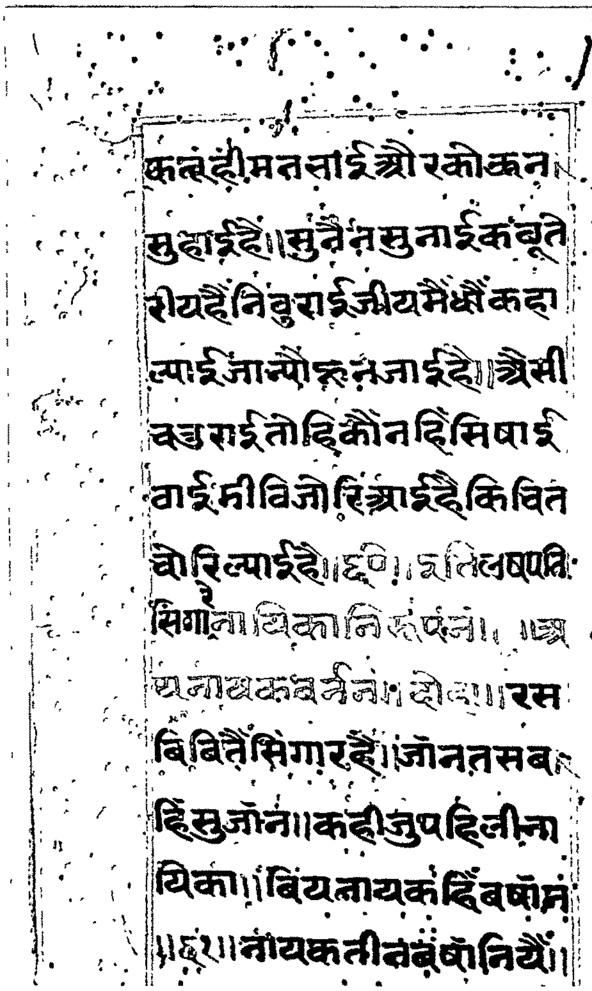

कहौं मत साई और को कन
सुहाई है। सुनैं न सुनाई कबूत
रीय है निठुराई जीय मैं धौं कहा
त्याई जान्यौं रूप न जाई है। औसी
चतुराई तो हि कौन दिसि षाई
वाई मी विजो रिझाई है कि चित
चोरि ल्याई है। २७। इति लषपति
सिंगारे नायिका निरूपनं। अ
थ नायक बर्ननं। दोहा। रस
विवि तैं सिंगार है। जोन तस ब
हि सुजोन। कही जु पहिली ना
यिका। विय नायक हिं वषान
॥२८॥ नायक तीन बषानियैं।

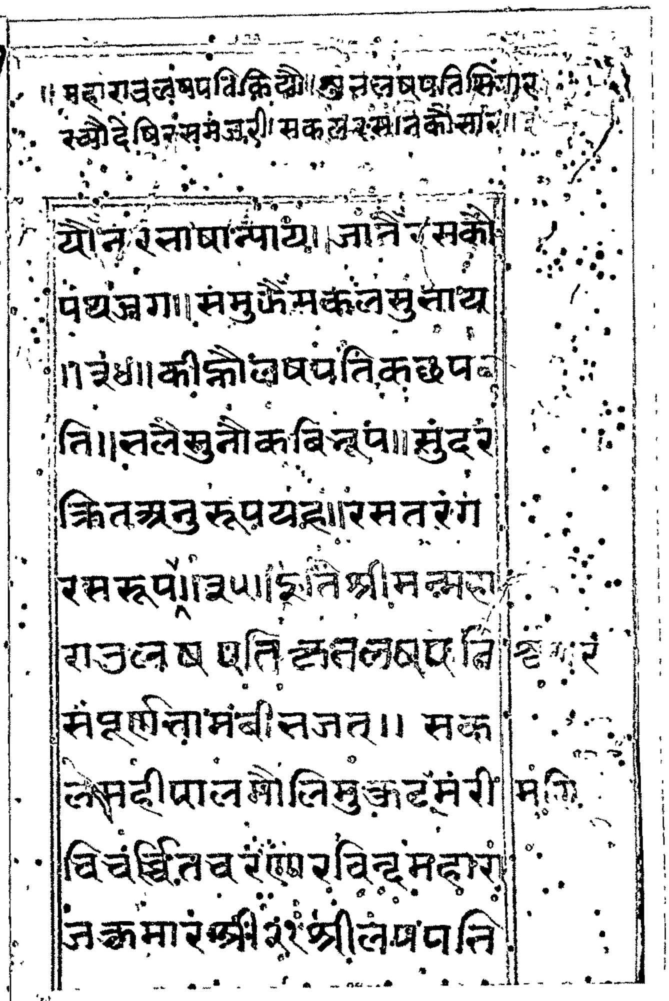

॥ महाराव लषपति कियौ। सु लषपति सिंगार
स्यौ देषि रसमंजरी सकल रसनि कौ सार॥ २
यौं न रस्ता षान्याय। जानैं रस कौ
पंथ ज्ञग। समुझैं सकल सुनाय
॥ २६॥ कौ कौ लषपति कछु प
ति। सलै सुनौ कबि रूप। सुंदर
कित अनुरूप य ह। रसतरंग
रस रूप॥ ३०॥ इति श्रीमन्महा
राउ लषपति सतलषपति सिंगार
संपूर्णता मंबीसजत॥ सक
लसदी पाल मौलि मुकुट मंरी मणि
विचर्चित चरण रविन्द महार
ज कुमार श्री ४ श्री लषपति

(चित्रसंख्या ४)

उक्त दोनों छंदों का परीक्षण करने से निम्न लिखित तथ्य सामने आते हैं :

(१) छंद संख्या ४३६ वाला छंद प्रक्षिप्त मालूम पड़ता है क्योंकि प्रति-पृष्ठ के शीर्षक पर लिखे जाने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रंथ संपूर्ण होने पर पुष्पिका अंश भी लिखे जाने के पश्चात् यह छंद जोड़ दिया गया है ।

(२) छंद संख्या ४३५ वाला छंद कवि ने अपने अभिमतानुसार लिखा हो ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि इस छंद में कवि ने जिस " रसतरंग " ग्रन्थ-नाम का उल्लेख किया है उसको वे ग्रंथारम्भ के ११वें छंद में भी लिख चुके हैं । इसलिये एक ही तथ्य को दुहरानेवाले छंद संख्या ११ और ४३५ एक ही व्यक्ति के लिखे होने चाहिये । इन छन्दों में जब एक तथ्य कवि अभिमतानुसार है तो अन्य तथ्य भी अवश्य होगा । इस प्रकार छंद संख्या ४३५ अर्थात्

" कीन्हौ लषपति कछ पति, भलै सुनौ कविभूप ।
सुंदर कृत अनुरूप यह रस तरंग रसरूप ।।"

लखपतिसिंह का है और उसमें आधार-ग्रन्थ " सुंदर शृंगार " का उल्लेख कवि के तत्संबंधी अभिमत को प्रकट करता है ।

(३) छंद संख्या ४३६ वाला छंद लखपतिसिंह नहीं लिख सकते, क्योंकि एक तो वे एक ही विषय के संबंध में अपने दो भिन्न मत नहीं दे सकते, भिन्नमत कोई अन्य ही दे सकता है । दूसरा लखपति स्वयं को " महाराउ " से सम्बोधित नहीं करेंगे, किसी अन्य के द्वारा ही वे " महाराउ " से संबोधित किये जायेंगे जिसको उनके प्रति तदनुकूल सम्मान इत्यादि होगा । छंद संख्या ४३५

में जो " लखपति कछपति " आया है वह तो कवि की अलंकरण प्रवृत्ति को ही सूचित करता है ।

(४) प्रस्तुत प्रति के प्रतिलिपक कुँवर कुशल स्वयं महाराव लखपतिसिंह द्वारा सम्मानित विद्वान् आचार्य एवं कवि थे । संभव है छंद संख्या ४३५ वाला छंद प्रतिलिपक कुँवर कुशल ने लिखा हो । दूसरा महाराव लखपति जैसे काव्यशास्त्र के अभ्यासी को यह निश्चित ही मालूम होगा कि सुंदरदास कृत " सुंदर शृंगार " की रचना भी भानुदत्त विरचित " रस मंजरी " के आधार पर हुई है ।[२५] इसलिये अनुमानतः छंद संख्या ४३५ में " रस तरंग " के आधार ग्रंथ के विषय में प्रकट किये गये अपने से भिन्न मत को भी लखपति ने मान्य रखा हो ।

(५) परंतु तुलनात्मक अध्ययन से यह निश्चित हो जाता है कि " रस तरंग " के वर्ण्य-विषय की समानता " सुंदर शृंगार " से स्पष्ट दिखाई पड़ती है, इतना ही नहीं जहाँ जहाँ " सुंदर शृंगार " का वर्ण्य-विषय " रस मंजरी " से भिन्न पड़ता है वहाँ वहाँ " रस तरंग " का भी, जिसका सविशेष उल्लेख आगे किया जायेगा ।[२६]

इन तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि लखपतिसिंह ने " रस तरंग " की रचना के लिये शाहजहाँ के आश्रित और हिन्दी के प्रसिद्ध आचार्य कवि सुंदरदास के " सुंदर शृंगार " को आधार-ग्रन्थ

०००००००

२५ " हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास " षष्ठ भाग, पृ० ३८९ और ४१९

२६ द्रष्टव्य

(अ) महाकवि भानुदत्त मिश्र विरचिता " रस मंजरी " संपादक : श्री बदरीनाथ शर्मा ।

(आ) " सुंदर शृंगार " की हस्तलिखित प्रति, हिंदी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वड़ोदा ।

बनाया था । लखपतिसिंह ने नायिका भेद विषयक ग्रंथ-रचना करने के लिये " सुंदर शृंगार " का जो आधार लिया था उसकी स्वाभाविकता पर भी विचार करना आवश्यक है ।

हिन्दी के रीतिकार आचार्य-कवियों ने अन्य रसों को विशेष महत्व न देकर शृंगार को सर्वश्रेष्ठ माना था और यही कारण था कि भारतीय काव्यशास्त्र के ध्वनि की उपेक्षा करके नायिका भेद के प्रति उत्कट आग्रह की प्रवृत्ति उनमें पाई जाती है । [२७] इस प्रवृत्ति के प्रति रीतिकाल के आचार्य कवियों को मोड़ने में शाहजहाँ के आश्रित कवि सुंदरदास के " सुंदर शृंगार " ने बहुत बड़ा योग दिया था । [२८] शृंगार रस को सर्वोत्तम मानकर उसके मुख्य अंग नायक-नायिका का, सविशेष नायिका का निरूपण " सुंदर शृंगार " में किया गया है :[२९]

" नौ रस में सिंगार रस सब तैं नीको आहि ।
तामैं नीकी नाइका बरनत हौं अब ताहि ।। "
(" सुंदर शृंगार ", छंद १७)

वैसे तो हिन्दी में नायिकाभेद विषयक ग्रन्थों की परंपरा को सुदृढ़ आधार भानुदत्त की " रस मंजरी " से ही मिला था । [३०] परंतु रीतिकाल की रस-नायिका भेद ग्रन्थों की परम्परा के प्रवर्तक आचार्य-कवि चिंतामणि ने अकबर साह कृत " शृंगार मंजरी " के ब्रजभाषा-रूपान्तर में आधार स्वरूप ग्रन्थों में " सुंदर शृंगार " का उल्लेख किया

०००००००

२७ हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, " षष्ठ भाग, पृ० ४९८
२८ वही, पृ० ४११ और ४३०
२९ (अ) " सुंदर शृंगार " की हस्तलिखित प्रति, हिंदी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा ।
(आ) "हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास ", लें० डॉ० भगीरथ मिश्र, प्रथम संस्करण, पृ० ७१-७२ ।
३० " रीति काव्य की भूमिका ", डॉ० नगेन्द्र, तृ० सं०, पृ० १२२-१२३ +

है ।[३१] इतना ही नहीं, इस रचना का उल्लेख बाद के (अर्थात् सं० १६८८ के बाद के) प्रायः सभी लेखकों ने अपनी रचनाओं में किया है ।[३२] अतः " सुंदर शृंगार " जैसे मान्य और प्रसिद्ध ग्रंथ को "रस तरंग " के विवेचन का आधार बनाना शास्त्रीय परम्परा के यथेष्ट ज्ञान का परिचायक है ।

इस प्रकार उक्त विवरण से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं : (१) " रस तरंग " की रचना में " सुंदर शृंगार " को आधार-ग्रन्थ बनाया गया था, (२) " सुंदर शृंगार " अपने विषय का सर्वमान्य और प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसका अनुसरण लखपतिसिंह के अपने परिपक्व दृष्टिकोण का परिचायक है, साथ ही, परंपरा के निर्वाह का सूचक भी ।

0000000

३१ (अ) "हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास ", ले० डॉ० भगीरथ मिश्र, प्रथम संस्करण, पृ० ७१ ।

(आ) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास ", षष्ठ भाग, पृ० ३९०

(इ) अकबर साह कृत " शृंगार मंजरी ", व्रजभाषा रूपान्तरकार कवि चिन्तामणि, संपादक, डॉ० भगीरथ मिश्र, भूमिका, पृ० १४ लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, १९५६ ।

३२ " हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास " षष्ठ भाग, पृ० ४१९

इसलिये अगले पृष्ठों पर " रस तरंग " और "सुंदर शृंगार" के तुलनात्मक अध्ययन से यह जानने का प्रयत्न किया जा रहा है कि " रस तरंग " में परंपरा का निर्वाह किस प्रकार हो सका है । यह विचारणीय है कि परंपरा का निर्वाह करने के कारण लखपतिसिंह मात्र अनुवाद ही प्रस्तुत कर सके हैं या मौलिक उद्‌भावना या किसी नवीन-तत्त्व को निर्मित कर सके हैं ।

" रस तरंग " और " सुंदर शृंगार " का तुलनात्मक अध्ययन :[३३]

उद्देश्य :

सुंदरदास ने ग्रंथ-रचना का उद्देश्य-कथन इन शब्दों में प्रस्तुत किया है :

" सुरबानी या तें करी, नरबानी में ल्याय ।
जाते मगु रस रीति को सबतें, समझै जाय ।।३६४।। "

लखपतिसिंह ने भी इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर " रस तरंग " की रचना की है :

" वृंदारक भाषा करी यौं नरभाषा न्याय ।
जानैं रस कौ पंथ जग समुझैं सकल सुभाय ।।४३४।।"

यह हम पूर्ववर्ती विवेचन में प्रसंगानुसार दृष्टिगत कर चुके हैं कि दोनों के रचयिता शृंगार रस को सर्वोत्तम और आलम्बन विभावों में नायिका को अधिक महत्वपूर्ण और रुचिकर मानते हैं ।

ooooooo

३३ (अ) " रस तरंग " की हस्तलिखित प्रति का परिचय दिया जा चुका है ।
(आ) " सुंदर शृंगार " की हस्तलिखित प्रति, हिन्दी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा में देखी जा सकती है ।

दोनों ग्रन्थों की विषय-वस्तु :

यह पहले कहा जा चुका है कि " रस तरंग " और " सुंदर शृंगार " दानों नायक-नायिका भेद विषयक ग्रन्थ हैं । दोनों ने शृंगार रस के तथा उसके आलम्बन विभाव के रूप में नायिका के महत्त्व-कथन से ग्रंथारंभ किया है । तत्पश्चात् नायिका-भेद की परंपरा में प्रसिद्ध पाँचों वर्गों का : (१) जाति-अनुसार, (२) धर्म-अनुसार, (३) दशा-अनुसार, (४) अवस्था-अनुसार और (५) गुण-अनुसार वर्णन प्रत्येक के भेदोपभेदों के साथ किया है । यहाँ संक्षेप में इन दोनों ग्रंथों के वर्ण्य-विषय और उसके वर्णन-क्रम का उल्लेख किया जा रहा है जो दोनों ग्रंथों में लगभग एक-सा है :

स्वकीया, परकीया और सामान्या के त्रिसूत्री वर्गीकरण द्वारा क्रमशः स्वकीया के मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा ; मुग्धा के अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना, ज्ञात यौवना के दोनों भेद नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा ; उसी प्रकार मध्या और प्रौढ़ा के विविध भेद तथा स्वकीया के ही अंतर्गत ज्येष्ठा-कनिष्ठा नायिकाओं का भी वर्णन कर दिया है । स्वकीया के पश्चात् परकीया के प्रसिद्ध छः भेदों में गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, मुदिता, अनुशयना का तथा सामान्या के अन्य संभोगदुःखिता और गर्विता का वर्णन करके त्रिसूत्री वर्गीकरण संपूर्ण किया गया है । इसके पश्चात् मान के लक्षण और भेद और अष्टविध नायिकाओं का वर्णन किया गया है । अष्टविध

नायिकाओं में प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, उत्कंठिता, वासक सज्जा, स्वाधीन पतिका, अभिसारिका आदि के मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या के अनुसार विविध भेदोपभेदों का कथन किया गया है । तत्पश्चात् प्रवासित या प्रवत्सत्पतिका का तथा गुणानुसार और जात्यानुसार उत्तमा, मध्या और अधमा तथा पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिणी और हस्तिनी का वर्णन किया गया है । इन विविध नायिकाओं के वर्णन के पश्चात् उनकी सखी एवं दूती के कार्यों का मंडन, उराहना, शिक्षा, परिहास, संघट्टन, विरहनिवेदन आदि का भी वर्णन किया गया है ।

नायिका-भेद-वर्णन के पश्चात् नायकवर्णन प्रारंभ होता है । पति, उपपति और वैशिक के उपरांत गुणभेदानुसार और नायिकाओं के प्रति नायक के कामाकर्षण के अनुसार उनके चार प्रकार भी गिनाये हैं : अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ । नायकों के सहचरों में पीठमर्द, विट, चेटक, विदूषक का भी वर्णन किया गया है ।

नायिका एवं नायक के वर्णन के पश्चात् अनुराग के भेद और शृंगार रस के शास्त्रीय-निरूपण का भी प्रयत्न किया गया है । भाव की परिभाषा दी गई है । सात्त्विक भाव और विविध हावों का तथा विप्रलम्भ शृंगार का, विरह की अवस्थाओं का भी वर्णन किया गया है । अंत में चेष्टावर्णन तथा उद्दीपन विभाव के रूप में ज्योत्सना के वर्णन के साथ दोनों ग्रंथ संपूर्ण होते हैं ।

इस प्रकार विषय-वस्तु की दृष्टि से लखपतिसिंह ने सुंदरदास का पूर्णतया अनुसरण किया है । यह दृष्टिगत किया जा चुका है कि सुंदरदास ने " सुंदर शृंगार " की रचना में संस्कृत के प्रसिद्ध नायिका-भेद-विषयक ग्रंथ " रस मंजरी " (भानुदत्त कृत) का आधार

ग्रहण किया है । रीतिकाल के अन्य हिन्दी आचार्यों ने भी यही किया है । [३७] ऐसी स्थिति में, रीतिकाल के अन्य आचार्य-कवियों की भाँति महाराव लखपतिसिंह भी इस विषय में कोई नई उद्भावना नहीं कर सके हैं, [३८] जिस पर विस्तृत विचारणा आवश्यक है ।

लक्षण और उदाहरण शैली :

रीतिकालीन हिन्दी आचार्यों ने नायिका-भेद निरूपण का कार्य दोहा-सवैया पद्धति में किया है । लक्षण के लिये संक्षिप्त छंद दोहे का प्रायः व्यवहार और उदाहरण के लिये अधिक विस्तृत ऐसे सवैये और कवित्त छंदों का प्रयोग किया गया है । [३९] संस्कृत की विवेचन-शैली अर्थात् शास्त्रगत न्यूनता और भ्रम को दूर करके निजी लक्षण स्थापित करने की शैली रीतिकाल के आचार्यों में बहुत कम मिलती है।[४०] सुंदरदास ने " रस मंजरी " को देखने पर भी, इस शैली को नहीं अपनाया, उसी प्रकार लखपतिसिंह ने भी । " रस तरंग " और " सुंदर शृंगार " के लक्षण-उदाहरणों के साम्य-वैषम्य पर विचार करके यह देखा जा सकता है कि " रस तरंग " के रचयिता ने परंपरा-निर्वाह कहाँ तक किया है ।

---

३७ " केशव का आचार्यत्व ", पृ० २४५, डॉ० विजयपालसिंह ।

३८ " रीतिकाव्य की भूमिका ", पृ० १४७-१४८, डॉ० नगेन्द्र ।

३९ " केशव का आचार्यत्व ", पृ० ६२, डॉ० विजयपालसिंह

द्रष्टव्य : " बरनत कवि सिंगार रस, छन्द बडे बिस्तारि ।
मैं बरन्यो दोहानि बिच, याते सुघर बिचारि ।।
" अक्षर थोरे भेद बहु, पूरन रस कौ धाम ।। "
(कृपाराम कृत " हित तरंगिणी ", छंद ४,५)

४० द्रष्टव्य: " शृंगार मंजरी ", भूमिका, पृ० २८-२९, डॉ० भगीरथ मिश्र ।

लक्षण :

" रस तरंग " और सुंदर शृंगार " के कुछ प्रमुख लक्षणों को यहाँ प्रस्तुत किया जाता है :

स्वकीया, परकीया और सामान्या का उल्लेख :

" सुंदर शृंगार " : " सो पुनि सुंदर कवि कहै तीन भाँति की नारि ।
स्वकीया परकीया अवरु । सामान्या सुबिचारि ।।१८।। "

" रस तरंग " : " तीन तरह की नायिका, रस ग्रंथनि रुचि पाय ।
स्वकीया, परकीया सही, सामान्या जु सुनाय ।।१३।। "

प्रौढ़ा के लक्षण :

" सुंदर शृंगार " : " काम केलि मैं अति चतुर पति सौं रति सौं प्रीति।
सोइ प्रौढा नाइका जाँकि हैं यह रीति ।।४२।।"

" रस तरंग " : " करत जु राजी पीय कौं चतुर कांम की चाहि ।
प्रीति धरैं मन मैं परम, त किनै प्रौढा ताहि ।।३८।।"

कुलटा लक्षण :

" सुंदर शृंगार " : " निसि दिन जाके रति कथा सदा कामु सौं काम ।
मीत अनेकनि सौं रमैं कुलटा ताकौ नाम ।।७५।।"

" रस तरंग " : " जगैं कांम जाकैं बहुत, रातिद्यौंस अभिरांम ।
कहियैं कुलटा नायिका, मित्र अनेक अरांम ।।८१।।"

मुदिता लक्षण :

" सुंदर शृंगार " : " सुनत भावति बात कौं फुलैं जाकैं गात ।
ता सौं मुदिता कहत है जे कविता सरसात ।।७७।।"

" रस तरंग " : " सुनत बात जब सुरत की, अंग फूलि चढिआत ।
ते मुदिता कवि कहत है रस बीस ह्वै
सरसात ।।८४।। "

अष्टविध नायिकाओं में से मुग्धा प्रोषितपतिका लक्षण :

" सुंदर शृंगार" : " मुग्धा प्रोषित पतिक कौं विरह न परगट होतु ।
ज्यौं घट मधि के दीप को भीतर हिं उद्योत ।।११०।।"

" रस तरंग " : " प्रोषित पतिका मुग्ध कौ परगट विरह न जनाय ।
घटदीपक कौ घट ही मैं तेज रहत तिहिं ठाय।।१२३।।"

अनभिज्ञ नायक लक्षण :

" सुंदर शृंगार " : " जे न भए कबहुं कहुं सुपने हु मैं विज्ञ ।
इंद्राइनि के फलनि सम ते नाइक अनभिज्ञ ।। "

" रस तरंग " : " सपनै हू मैं ना सुने बनिता रस के विग्य ।
मट्ठ तूंबा फल से कहे यह नायक अनभिज्ञ ।।३००।।"

शृंगार रस वर्णन :

" सुंदर शृंगार " : " द्वैविधि कौ सिंगारन हैं कहत सबैं कवि लोगु ।
प्रथम जानि संयोग कौं बरनौं बहुरि बियोगु ।।"

" रस तरंग " : " दंपति इक्ठे देषियैं रतिपति कौं संचार ।
कामकला की चातुरी ये संयोग सिंगार ।।३२४।।"

" सुनि दो विधि सिंगार है संयोग औ वियोग ।
जैसौ जहां बनाउ सौ, लषि बरनत है लोग ।।३२५।।"

सात्त्विक भाव वर्णन :

" सुंदर श्रृंगार " : " स्वेद कंपु स्वरभंग ए स्तंभ विवर्णन नाउं ।
रोम हर्ष आंसु प्रलय आठौं सात्विक भाउ ।। "

" रस तरंग " : " स्तंभ कंप सुरभंग सुनि बिबरन आंसू बोलि ।
स्वेद पुलक लीन जु सही, सात्विक आठ
सतोलि ।।३३४।। "

भाव की परिभाषा :

" सुंदर श्रृंगार " : " सुंदर मूरति देषि सुनि चित मैं उपजैं चाहु ।
प्रगट हौं हि दृग माँह तैं सो कहियत हैं भाउ ।। "

" रस तरंग " : " कारन ही तैं काज ह्वै मानि लेहु मति मान ।
कारन रस के भाव केंहि पहिलैं भाव प्रमानं ।।३३० ।
" काननि सूरति सुनि कहूं द्रिगनि कहूं दरसाव ।
सो संयोग सिंगार के भये रिदै मैं भाव ।।३३१।।"

विप्रलंभ श्रृंगार की दसों अवस्थाओं का वर्णन :

" सुंदर श्रृंगार " : " विप्रलंभ मैं होते हैं दसौं औस्था आनि ।
अभिलाष स्मृति गुन कथन चिंता जडता जानि ।
पुंनि उद्वेग प्रलाप कहि ब्याधि वहुरि उन्माद ।
दसौं निधन हैं कवि कहत जा मैं कछुन सवादु ।।"

इसी प्रकार " रस तरंग " में भी :

" विप्रलंभ मैं होत बहुरि ही अवस्थानि दस अंग ।
इनि के कहिबे कौ हयां औसर पावत रसिक प्रसंग ।।३८५।।"

फिर अभिलाष, स्मृति, गुणकथन, चिंता, जड़ता, उद्वेग, प्रलाप, व्याधि, उन्माद और निधन को गिनाया है ।

" रस तरंग " और " सुंदर शृंगार " में दिये गये लक्षणों का स्वरूप विचारणीय है । ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ " सुंदर शृंगार " और " रस तरंग " में अक्षरशः समानता दीख पड़ती है । इस अनुसरण का कारण कदाचित् यही प्रतीत होता है कि लक्षण-निरूपण में शास्त्रीयता लाने के लिये ऐसा किया हो । लखपतिसिंह की ऐसी शास्त्र-परक दृष्टि और निष्ठा उनकी सीमाओं को देखते हुए सराहनीय है । वैसे रूढ़ मान्यता का अनुगमन सुंदरदास और लखपतिसिंह दोनों ने किया है । लक्षण-निरूपण के प्रसंग में सिद्धान्त-विषयक उद्भावनाओं के सम्बन्ध में डॉ० नगेन्द्र लिखते हैं :

> " हम देख चुके हैं कि हिन्दी-रीति-काव्य के पीछे एक विशाल शास्त्रीय आधार था, जिसके अंतर्गत विभिन्न सम्प्रदायों की प्रतिष्ठा और काव्य के सभी अंगों का सूक्ष्म विवेचन होने के उपरान्त स्थिर सिद्धान्तों की स्थापना हो चुकी थी । मम्मट के समन्वयकारी निरूपण के बाद मूल सिद्धान्त-विषयक उद्भावनाएँ प्रायः निःशेष हो गई थीं । अब तो प्रायः सम्पादन और स्पष्टीकरण ही शेष रह गया था । "[४१]

डॉ० नगेन्द्र के प्रस्तुत कथन के प्रकाश में " रस तरंग " में भी विषय के स्पष्टीकरण की प्रवृत्ति को लक्ष्य किया जा सकता है, मौलिक विवेचन को नहीं ।

इस विवेचन के साथ यह भी विचारणीय है कि जब काव्य-शास्त्र के सभी अंगों के लिये यह सत्य सिद्ध हो चुका था, तब केवल

0000000

४१ " रीतिकाव्य की भूमिका ", पृ० १३३, डॉ० नगेन्द्र

शृंगार रस और नायिका-भेद-विषयक ग्रंथों के लिये तो मौलिकता का प्रश्न ही नहीं उठ सकता है । इसका कारण देते हुए डॉ० नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है कि : " दूसरे, जिसके लिए इन ग्रन्थों की रचना हो रही थी वह पंडितों का वर्ग न होकर केवल रसिकों का ही समुदाय था, जिनमें अन्तर्विश्लेषण की सूक्ष्मताओं को ग्रहण करने का धैर्य नहीं था।[४२] इस पर आगे विचार किया जायेगा कि महाराव लखपतिसिंह रसिक ही थे, शास्त्रज्ञ पंडित नहीं ।

तात्पर्य यह है कि " रस तरंग " और " सुंदर शृंगार " दोनों ने शास्त्र-निरूपण में परंपरागत अनुकरण मात्र किया है ।

उदाहरण :

लक्षणों की तुलना के पश्चात् उदाहरणों के सम्बन्ध में भी यह विचारणीय है कि " रस तरंग " और " सुंदर शृंगार " में किस प्रकार का साम्य-वैषम्य है । उपयुक्तता और सरसता उदाहरणों की दो प्रमुख विशिष्टताएँ हैं । इसके साथ यह भी विचारणीय है कि कवि ने उदाहरण दूसरों से लिये हैं या स्वयं अपनी कल्पना और कवित्वशक्ति से निर्मित किये हैं ? इन विभिन्न दृष्टिकोणों से लखपतिसिंह के द्वारा दिये गये उदाहरणों की सुंदरदास के उदाहरणों से तुलना करना अनिवार्य है, जिसके आधार पर " रस तरंग " का मूल्यांकन टिक सकता है । कुछ प्रमुख उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

१- स्वकीया नायिका उदाहरण :

" देषति नैंन कैं कौंननि लौं अधरांन हि मै मुसकानि कौ थांनौं ।
बोलत बोल सुकंठहि मैं चलतैं पग पैं न कहु अहटानौं ।

४२ "रीतिकाव्य की भूमिका", पृ० १३३

सुंदर कोप नही सपुनैं अह जो भयो तो मन मैं हि बिलानौं ।
मैं वसुधा बसुधाइ सबै पुनि याकी सुधाइ सुधाइ है जानौं ।।"
(" सुंदर शृंगार ", छंद २१)

" नैननि कौन लौं होत निहारिबौ, ओठनि मैं मुसक्यानि करै ।
बोल की थोर — डी सुगरै बिवि ओर निहारि के पायं धरै ।
कोप न है सपने अपने मन जो भयो तौ मन ही में मुरै ।
लाज जिहाज बनी सिरताज निहारियै पीय कौ हीय बरै ।। "
(" रस तरंग ", छंद १६)

कहना न होगा कि लखपतिसिंह का चित्रण " सुंदर शृंगार " की तुलना में अधिक सटीक एवं सजीव है ।

२- प्रौढ़ा नायिका का " सुरतांत वर्णन " सुंदर शृंगार " में छंद संख्या ४४ और ४५ दो छंदों में ही समेट लिया गया है, जबकि " रस तरंग " में अधिक विस्तार के साथ छंद संख्या ४० (४० संख्या के दो छंद हैं), ४१, ४२ में इसके चार चार उदाहरण दिये हैं । इसी प्रकार विपरीत रति के वर्णन में भी " सुंदर शृंगार " से अधिक विस्तार " रस तरंग " में मिलता है । निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

" ~~आआआ~~ रसरंग भरे अंग संग पीया पिय सोय गए सुख लैं सुख दैं ।
इहि बिचि जगे हरि जु उघरि अंगीयां पर डिठि गइ परि कैं ।
कुच ऊपर देख्यौ नख छत सुंदर आठ कौ अंक सौ ऐसौ लसैं ।
मन हु मनमथ के हाथि चढ्यौ हे महावत जोबन अंकुश लै ।।४४।।
(" सुंदर शृंगार ", छंद ४४)

" पूरन यौवन पाय कैं दंपति रैन सबैं रस सौं रति मानि ।
प्रात समै उठि नागरि आवत आरस अंग अैंडाय जंभानी ।

मोतिनि की ढरकी लर मांग तैं वे उपमा लषधीर जुआंनी ।
ब्याल कौ बाल न जांनत डारि कैं कंचुकि सी फन सौं
लपटानी ।। "
(" रस तरंग ", छंद ४०)

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में विषयगत एकरूपता होते हुए भी " रस तरंग " का कवि " सुंदर शृंगार " से भिन्न कल्पनाशक्ति का परिचय देता है ।

३– इसी प्रकार धीरा मध्या नायिका के उदाहरण में भी लखपतिसिंह सुंदरदास से भिन्नता स्थापित करते हैं :

" आए हो मेरे मया करि मोहन मो कौ तो मानु महानिधि तूठी।
आजु कि बानिक देषि कैं सुंदर सोउ मिलि तिय होइजू रूठी ।
कैसि बिराजत निकी नइ करकी अंगुरि मैं अनुप अंगूठी ।
प्यारे कह्यौ हरि प्यारि सुं यौं तब तेरि सौं तैं समुझी
सब झूठी ।। "
(" सुंदर शृंगार " छंद ४ ५०)

लखपतिसिंह उसी को इस प्रकार कहते हैं :

" प्यार कियैं पन राखिबौं प्रीति कौ मेरे ह्यां आये हौ लला ।
आजु तौ रूप अनूप बने अति चातुर सीखे हौ कोक कला ।
कौंन सुनार गढ्यौ पुर मैं छबि छाय रह्यौ छिगुनी कौं छला ।
तेरी सौं तूं तौ न जांनी ये वात धरौं यह होत है तेरौ भला ।।"
(" रस तरंग ", छंद ५२)

दोनों छंदों की तुलना से यह स्पष्ट हो जाता है कि " रस तरंग " का उदाहरण अधिक सजीव, नाट्यात्मक एवं काव्यात्मक है। दोनों में लक्षणोपयुक्तता में विशेष कोई अंतर नहीं है।

सुंदरदास की तुलना में लखपतिसिंह अधिक शृंगारी और कल्पनाशील कवि सिद्ध होते हैं। विपरीत रति के ये उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

" विपरीत रचि रति राजीव नैन यों राधिका राजति ता पल मैं।
दृग रंग भरे अलकैं बिथुरी मुसक्यात लसैं मुक्ता गल मैं॥
कवि सुंदर भनाइ दुहुं कुच कि भनकैं हरि के यौं उरस्थल मैं।
छतियां तरन तुंबनि दे मकर दज मानौं तरै जमुना जल मैं॥ "

(" सुंदर शृंगार ", छंद, ४६)

कवि सुंदरदास ने नायिका के स्तन की भनाई नायक की छाती पर पड़ने की जो कल्पना की है उससे लखपतिसिंह की ये कल्पनाएँ सहज ही तुलनीय और आस्वादनीय हैं :

" चुंबन अधर पान करि करि अघातु नांहि मांच्यौ रंग
लषधीर रस ही की कथ कौ।
पूरि पूरि कांम कला भूरि भूरि भाइनि सौं करत सुरत
वहैं विपरीत पथ कौ।
स्यामा के श्रवन तैं जराय कौ तरयौना छूटि पर्यौ पीय
हीय पैं खिलौना मनमथ कौ।
मेरे जांनि राह जीतैं मेरन की सिलाकै मध्य चालिवै तैं
चक्र टूट्यौ चंद्रमा के रथ कौ॥ "

तथा

" हरषि हरषि लपटाय लोट पोट भये मुरैं नही ऐसे जुरे
प्रीति रीति परसैं।

चाहि चाहि चूँमि चूँमि चिऊनटि चिऊनटि रहैं राति
कीन्ही रति सो सुहावनी यैं दरसैं ।
मोर अरसानो जमुहानी ग्रीवा ऊंची करि मांग लर
टूटी कुच ऊपर यौं दरसैं ।
मानौ कारे बार धुरवानि ऊंनि प्रात समैं मोतिनि की बूँदैं
बूँदैं सिवसीस ही पैं बरसैं ।। "

विपरीत रति की स्थिति में नायिका के आभूषण (तर्यौना) के नायक की छाती पर गिरने की अवस्था को मेरु मेरु की शिला के मध्य चलने च से चन्द्रमा के रथ का चक्र टूटने की उपमा देना और उस आभूषण को मन्मथ का खिलौना कहना कल्पना और कवित्व-शक्ति का परिचायक है ।

मध्या अधीरा नायिका के उदाहरण में सुंदरदास ने गाँव के वातावरण की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की है तो लखपतिसिंह ने गुप्ता नायिका की उक्ति में सामाजिक प्रतिकूलता के प्रति कितना तीव्र असंतोष व्यक्त किया है :

(क) " सांझनी परौं बछरानि चराइ कैं आइकैं बाहिर कौं फिर
भागे ।
कलि गए चलि वाहि गलि महि सुंदर आछे बनाय कैं बागे ।
आज तौ लोचन ऐसे है लालन मानु मजीठ के रंग में पागे ।
लाजत जी डरन डारि दयो तुम तोह हरि ऊबट पार
न लागे ।। "
(" सुंदर शृंगार ")

(ख) " सासु जौ रीस भरौ तौ भरौ ओ रिसाये, सगानि की
गारि मैं षाऊं ।

" निंद ननद करौ तौ करौ औ सहेली की सीष कौं दूरि बहाऊं ।
चूहा की चाहि तैं पीठि बिलाउ हवाल करै सौ मैं काकौं
दिषाऊं ।
छीनि लयौ छल छूटि छितैं तन ये घर राति न सोइबै जाऊं ।

(" रस तरंग " छं-सं७३)

लखपतिसिंह की परकीया वाक् विदग्धा सुंदरदास की वाक् विदग्धा नायिका से अधिक चतुर होने के साथ कवि की कल्पना-शक्ति की परिचायक है :

" सुंदरी जांनि के मंदिर के पिछवारै हैं आइ कैं गढे कन्हाइ ।
चाहैं कछुक कहिबौं सकुचे तब किनि हैं बातनि में चतुराइ ।
पूछि परोसनि कैं मिसु कैं उत वाहि मैं पिकौ सहेट बताइ ।
साथ चर लौगी हौ कालि हौं जाउंगी देवी के देहुरे पूजन माइ ।।"
(सुंदर शृंगार, छंद ७१)

" उत्तर ठैकौ है शीत ये पंथिक उत्तर और कौं आइये जू ।
ताल तमाल लता लपटी जहां घांम घरीक घमाइये जू ।
बेलि चंमेली और मौलसिरी के सुवासनि तैं सुष पाईये जू ।
टारि सबैं श्रम नारि कहैं इमि जैबौ तहां फिरि जाईये जू।। ७५।।"
(" रस तरंग ", छंद ७५)

मुदिता नायिका के उदाहरण में निस्सन्देह लखपतिसिंह ने " सुंदर शृंगार " की उक्ति का अनुसरण किया है :

" सुंदर शृंगार " : " लोग बरात गए सगरे तुम राति जगे कौं चलि सब
कोउ ।
सुंदर मंदिर सुनौ इहां अब को रषवारि हैं
ताहिन जोउ ।

सासु कह्यौ तबहि लखिरि लहुरि [redacted] दुलहि घरहि अब सोउ ।
फूलि गयौ सुनि बात यौं गात समान न कंचुकि में कुच दोउ ।।"
(" सुंदर शृंगार ")

" रस तरंग " " राति जगौ हम जाति जसौदा कै नंद संदेसौ
पठायौ है रंचक ।
चौकी करैंगी कौं या घर की निसि जागैं
सयांनी ह्वै माल की संचक ।
सासु कह्यौ लहुरी दुलही तुम दूसरैं गेह बिछावहु
मंचक ।
फूलें हैं गात सुनी यह बात समात नहीं कुच आपु ने
कंचक ।। "
(" रस तरंग ", छंद ८५)

मुग्धा प्रोषित पतिका नायिका के ~~उल~~ उदाहरणों में लखपतिसिंह ने सुंदरदास से भिन्न अभिव्यक्ति-कला दिखाई है । लखपतिसिंह ने यहाँ नायिका की आँसू ढुलकती आँखों के लिए जलभरी कटोरी को उपमान बनाकर लखपतिसिंह ने नई कल्पना की है :

" लाल चले परदेस हिं बाल कौं हाल भयौ तन षीन षरैं ।
जीउ मैं षेद न देत हैं भेद ये बात न काहू सषीं सौं करैं ।
आवतु हैं अंसुआ बरुनी लौं संकोच कियैं द्रिग मांभि फुरैं ।
जैसैं घर्यार कटोरी भरैं जल फेरि कैं भाजन ही में ढरैं ।। "
(" रस तरंग ", छंद १२४)

प्रौढ़ा प्रोषित पतिका नायिका के उदाहरण तुलनीय हैं :
सुंदरदास का उदाहरण :
" पीतम गौनु किधौं जिय गौनु कि मारन कि मौनु भयानकु मारौ ।

पावसु पावकु फूल कि सूल पुरंदर चापु कि सुंदर आरौ ।
सिरी क्यारि किधौं तरवारि हैं बारि दव दरि कि बानु
बिसार्‌यौ ।
चातुक बोल कि चोट चुभै चित चंद वधू कि चकोर कौ चारौ ।।"
(" सुंदर शृंगार ", छंद ११४)

लखपतिसिंह ने प्रोषितपतिका की विरहजन्य कृषकायता का हृदयगम्य वर्णन किया है :

" कान नां सुनत कहूं आंखि न उघारति है भोजन की चाहिन
हजार बार कहियै ।
काल्हि चले कान्ह आजि देखी याकी क्रिसताई ह्वै गौ कहा
हाल विरहागि भाल दहियै ।
पलकनि पौंन तैं उडैगी यह जांनि सखी आसपास बैठी अनिमेष
द्रिग रहियै ।
अतन भई है सो जतन करि ढूंढै जौतौ मैं न नैंन देखिबे कौं
उपमैंन चहियै ।। "
(" रस तरंग " छंद १२९)

आठ सात्त्विक भावों का वर्णन दोनों कवियों ने एक साथ किया है । " रस तरंग " के उदाहरण में " सुंदर शृंगार " के उदाहरण से बहुत समानता दिखाई पड़ती है :

" लोचन सजल चल विचल बचन मुख चरन जुगल नैकुं टरत न टारे हैं ।
पीरि परि आइ कहि सुंदर कपोलनि मैं कांपत अधर जानौं सुधा
सौं सुधारे हैं ।
पसीना सौं भीज्यो तनु फूले रोम हरष तनु लिन ह्वै कैं रह्यौ
मनुए गुन तुम्हारे हैं।
छिनुहि मैं ह्वै गइ हो आन हाथ आन भाइ जानति हौं कहूं
कान्ह कुंवर निहारे हैं । "
(" सुंदर शृंगार "   )

लखपतिसिंह का उदाहरण द्रष्टव्य है :

" जल तैं नयन अति पीरे हैं कपोल जुग, कंपत अधर बीचि लाल
रंग ढार्यौ है ।
कुचनि पसीने भीने उठे हैं नवीने रोम बैननि प्रबीने मनभेद क्यौं
विचार्यौ है ।
आरस अनेक अंग हाथ पाय सुधि नांही चूरन बसीकरन कौनैं
तो पैं डार्यौ है ।
ब्रिज गली मांभिन ब्रिषभान लली चली जाति आजि कहूं
मुरली मनोहर निहार्यौ है ।। "

("रसतरंग", छं. सं. ३४२)

अन्त में दोनों कवियों द्वारा शृंगार रस के उद्दीपन विभाव के रूप में ज्योत्स्ना का जो वर्णन किया है, वह देख लिया जाय, जिससे दोनों कवियों की समानता का उचित परिचय मिल जाता है :

" सुंदर शृंगार " का ज्योत्स्ना वर्णन :

" सांभन समैं को पछांह दिसि की उछाह सौं ऐसी ललाइ निहारी ।
चंदन कौनु गुलाल कि तो करता इरतो पल हुं कि बिसारी ।
तारे तहां ढिग चंद कला कवि सुंदर सो छबि ऐसी बिचारी ।
मैं न मनौंग ढिगो लगि लोलनि घेलि कौं छोरि गिलोल संवारि ।।
फूलि कमोदनि मोद मैं चंदु विनोद सौं सुंदर तारे हैं त्यौंही ।
मोती के हार घने घनसार सनी सुभ्र सेज सुगंध निसौंही ।
राधिका माधव जू जमुनां तट ए जुग जोहन मैं जाइ मैं ज्यौंहि ।।"
जांनति हैं अनुमान रमा संग होहिगे छिर समुद्र मैं यौंही ।।
रूपकि भूमि कि पारन पर्यौ सिगरो जग चंदन सौं लपसंनौं ।
यौं लखि जोंहन महा कविराइ कहे उपमा एक या हु तैं आनौं ।

चंदकि अंसनि कौं करि सूत बुन्यो बुधि नासितु अंबर जानौं ।
उज्वल के पुंजनि ज्यौंत बनाइ दशौं दिशि यौं मढि राषि हैं मानौं ।।"

लखपतिसिंह का ज्योत्सना-वर्णन :

" सूर अथौंत समैं दिसि पश्चिम अंबर देषी है अैसी ललाई ।
पल्लव और गुलाल के रंग की दीठि परी नहीं अैसी निकाई ।
चंदकला ढिग तारनि पुंज तहां उपमा यह चित्त मैं आई ।
मांन हि कौ गढ तोरिबै मैंन यौं आप सवारि गिलोल बनाई ।।
सेभ्न सुहावनो फूल के पुंजनि तारनि चंद्रप्रकास है तैसैं ।
मोती के हार कुमोदनि फूली है त्यौं घनसार सुबास है वैसैं ।
ये यमुना तट माधव राधा जू जौन्ह की जोति मैं जो ये हैं जैसैं ।
हौं अनुमांन करौं स- पयसिंधु मैं लछि लैं संगम हौं हिंगे अैसैं ।।
की धरनी सब रूपे के पत्र सी ता परि चंदन लेप लगायौ ।
चांदनी पारद सो लपटांनी है ऊजलता सौं सबैं जग छायौ ।
सूत कियौ ससि की सब अंसुनि हाथनि तैं बिधि आप बनायौ ।
ज्यौंत बनाव कियौं चतुराई दसौं दिसि अंबर अैसै तनायौ ।। "

" रस तरंग " और " सुंदर शृंगार " ग्रंथों के तुलनात्मक अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष पहुँचा जा सकता है :

(१) " रस तरंग " की रचना करने में लखपतिसिंह ने अपने आधार-ग्रन्थ " सुंदर शृंगार " का पूरा पूरा उपयोग किया है । इसके कारणों के सम्बन्ध में सूक्ष्म विचार करने से यह अनुमान होता है कि सुंदरदास के पूर्व नायिका-भेद विषयक जो ग्रंथ लिखे गये थे, जैसे — कृपाराम-कृत " हित तरंगिणी," सूरदास कृत " साहित्य लहरी ", नन्ददास कृत " रस मंजरी " और " रूप मंजरी " और रहीम कृत " बरवा नायिका-भेद "[४३], वे या तो विशिष्ट उपासना-पद्धति

---

४३ " केशव का आचार्यत्व ", पृ० २०२

और साम्प्रदायिक सिद्धान्तों से प्रभावित थे या तो अवधी भाषा में लिखे गये थे । [४४] सुंदर दास के पश्चात् लिखे गये एतद्विषयक ग्रंथों में केशवदास कृत " रसिक प्रिया " शास्त्राभिमुखी, नैतिक, सामाजिक दृष्टि से लिखा गया था, [४५] और उसके पश्चात् लिखे गये अनेक ग्रंथों ने प्रायः " सुंदर शृंगार " का ही अनुसरण किया है । [४६]

(२) " रस तरंग " में अपने आधार-ग्रंथ का अनुसरण वर्ण्य-विषय, शैली, लक्षण-उदाहरण आदि बातों को लेकर किया गया है । इतना होने पर भी, लखपतिसिंह ने उदाहरणों के अंतर्गत अपनी निजी प्रतिभा का परिचय अवश्य दिया है ।

(३) लखपतिसिंह के विवेचन में कोई नवीनता नहीं दृष्टिगोचर होती किन्तु दूसरी ओर अपेक्षाकृत उदाहरणों की रचना में उनकी रुचि अधिक रमी है ।

(४) लखपतिसिंह शास्त्रज्ञ पंडित या आचार्य न होकर एक रसिक-हृदय-सम्पन्न कवि हैं ।

(५) नायिका-भेद-विषयक ग्रंथों में शृंगार-रस के आलम्बन विभाव नायक और नायिकाओं के भेदोपभेदों का निरूपण किया जाना चाहिये । परंतु " रस तरंग " के वर्ण्य-विषय के अनुक्रम को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि उसमें शृंगार रस के शास्त्रीय विवेचन से अधिक महत्त्व उसके आलम्बन-विभावों के काव्य-चमत्कार-युक्त वर्णन को दिया गया है, उसमें भी नायिका के अनेक भेद-प्रभेदों के विवेचन में कवि की व्यक्तिगत रुचि अधिक रमी है ।

oooooooo

४४ " ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद ", पृ० ९३ से १०७

४५ " केशव का आचार्यत्व ", पृ० २४५

४६ " हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास ", षष्ठ भाग, पृ० ४१९

अतएव यह कहा जा सकता है कि " रसतरंग " प्रमुखतया नायिका-भेद विषयक काव्य-ग्रंथ है, जिस में आवश्यकतानुसार नायकों के भेदोपभेदों एवं शृंगार-रस का भी शास्त्रीय विवेचन संक्षेप में किया गया है। यदि शास्त्रीय ग्रन्थ की रचना का ही उद्देश्य लेकर इस की रचना करने का लखपतिसिंह को अभिप्रेत होता तो उन्होंने उचित क्रमानुसार रस के स्वरूप, उसके भेद, स्थायिभाव का वर्णन, विभावादि की शास्त्रीय चर्चा और उसके अंतर्गत नायक-नायिका-भेद का वर्णन किया गया होता, परंतु उस में ऐसा नहीं किया गया है। रीतिकाल के अन्य सभी नायिका-भेद-विषयक ग्रंथों में उक्त क्रम का अभाव दिखाई पड़ता है।[४७] अतः " रसतरंग" को भी ऐसी कोटि की रचना कहा जा सकता है।

" रसतरंग" की विषय-वस्तु के अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि लखपतिसिंह ने अपनी रसिकता के परितोष एवं अपने शृंगारभाव और सौन्दर्य-दृष्टि की रसात्मक अभिव्यक्ति के लिये इस की रचना की है, शास्त्रनिरूपण के लिये नहीं।

ooo

ooooooo

४७ " रीतिकाव्य की भूमिका ", पृ० १३९, डॉ० नगेन्द्र